ज्योति शिखा

March '73

L54

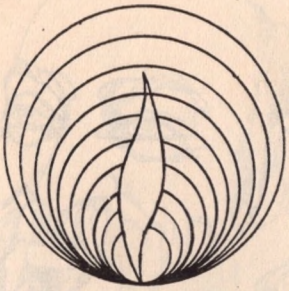

ज्योति शिखा

भगवान श्री रजनीश की अमृतवाणी का त्रैमासिक संकलन

सम्पादक :

मा योग क्रांति

स्वामी कृष्ण कबीर

वर्ष : ७ वाँ, अंक २८ : मार्च १९७३

आवरण सज्जा : **अर्हत**

वार्षिक शुल्क : रुपये ८–००, एक प्रति : रु. २.००

प्रकाशक :

मंत्री, जीवन जागृति केंद्र, ३१, इजरायल मोहल्ला, भगवान भुवन, मस्जिद बन्दर रोड, बम्बई–९ फोन नं. ३२१०८५–३२७६१८.

मुद्रक :

दि स्टेट पिपल प्रेस, जन्मभूमि भवन, घोगा स्ट्रीट, बम्बई-१.

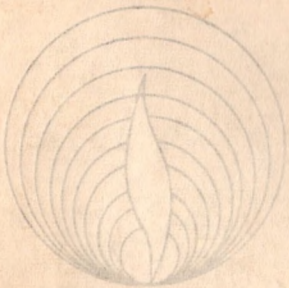

अनुक्रम

१.	खोजो स्वयं में छिपे प्रभु को		३
२.	लोभ ।	स्वामी चैतन्य भारती	५
३.	गरीबी के कष्ट: अमीरी का दुख	स्वामी योग चिन्मय	१७
४.	शिवनेत्र	मा योग क्रांति	२१
५.	तंत्र है योग	स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्त्व	२५
६.	क्रांतदर्शी रजनीश	प्रो. र. के. सोनग्रा	५१
७.	आजू मैं प्रियतम पायो री मोहे प्रिय मिलन का चाव	मा समादि दर्शन	५७
८.	कुछ स्फूट विचार		५८
९.	सर्वसार उपनिषद	साधु आनंद अरविंद	६१
१०.	सम्मिलित अवतरण	डॉ. आर. रामन	८०
११.	जीवन सृजन के महान संगीत दृष्टा : भगवान श्री रजनीश	श्री अजितकुमार जैन	८२
१२.	पत्र–प्रेरणा	स्वामी योग चिन्मय	८७
१३.	दुखवा मैं कासे कहों	स्वामी आगेह भारती	९१

खोजो –स्वयं में छिपे प्रभु को

मनुष्य एक तनाव है––पशु और प्रभू के बीच ।
मनुष्य अवस्था नहीं – बस एक संक्रमण है ।
यही उसका सौभाग्य भी है और यही उसकी पीड़ा भी ।
शायद कोई सौभाग्य बिना पीड़ा के नहीं हो सकता है, इसलिए।
शिखर बिना खड्डे-खाइयों के होना भी चाहें तो कैसे हो सकते हैं।
इसलिए मनुष्य होना एक चिन्ता है–एक गहन संताप ।
या तो पशु होने में विश्राम है, या प्रभू होने में ।
पशु मे वही विश्राम है जो कि अज्ञान और अंधकार और निद्राकी मूर्च्छा में है ।
और प्रभू में वही विश्राम है जो कि ज्ञान, मुक्ति और प्रकाशोपलब्धि में है।
फिर मनुष्य होकर कोई पशु होना भी चाहे तो नहीं हो सकता है ।
क्योंकि वापस पीछे लौटने का कोई उपाय नहीं है ।
इसलिए, बढ़ो आगे-खोजो स्वयं में छिपे प्रभु को । ।
तोड़ो बीज और बनो वृक्ष ।

– भगवान श्री

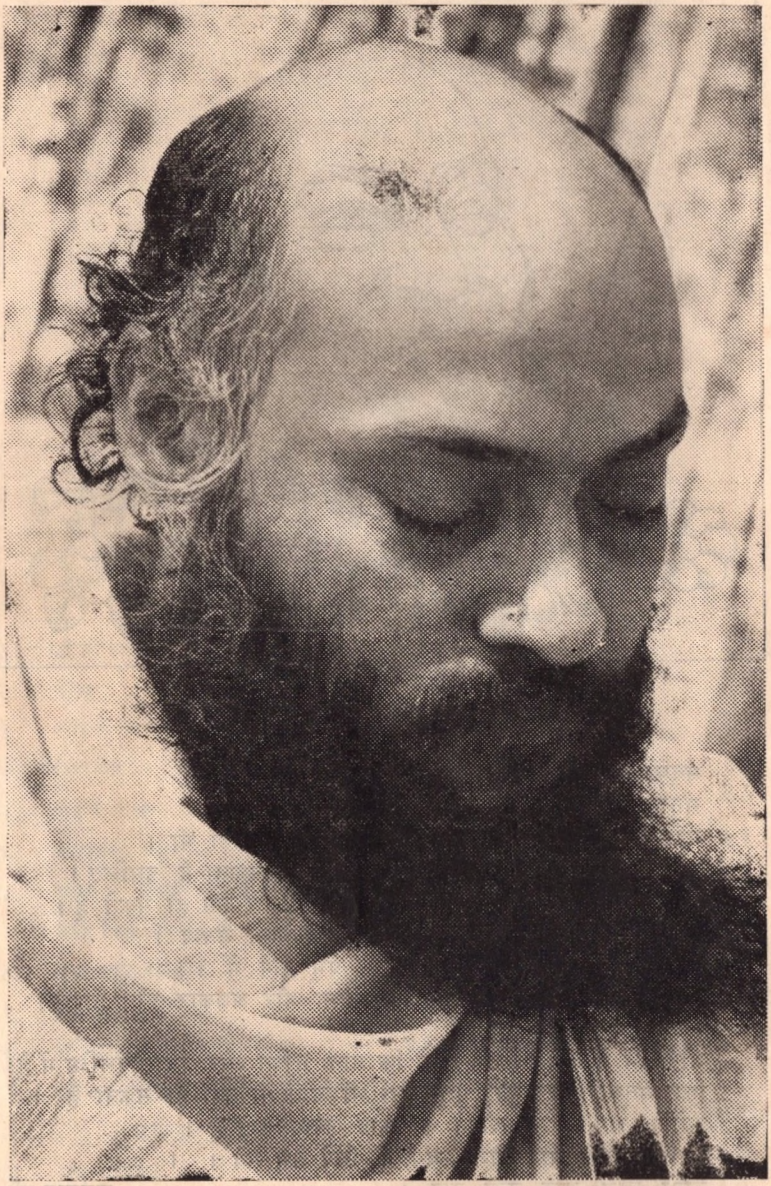

'मै सजग चिर साधना ले !'

लोभ !

[महावीर—वाणी पर भगवान श्री द्वारा दिये गये प्रश्नोत्तर—प्रवचन का अंश]

संकलन : स्वामी चैतन्य भारती

एक मित्र ने पूछा है : पाने योग्य चीज को अधिक मात्रा में पाने की चेष्ठा करना भी क्या लोभ है ? अधिक धन प्राप्त करके अधिक दान करने को आप क्या कहेंगें ?

काम, क्रोधादि शत्रुओं में, आम तौर से लोभ के प्रति हमने थोड़ा अन्याय किया है, क्रोध और मोह से भी अधिक अनिष्ट कारी है। लोभ के संबंध में थोड़ी बातें ख्याल में ले लेना जरूरी हैं। काम, क्रोध, और मोह—लोभ के मुकाबले में कुछ भी नहीं हैं। लोभ बहुत गहरी घटना है। छोटा बच्चा पैदा होता है तब उसके भीतर काम नहीं होता, पर लोभ होता है। काम तो आयेगा बाद में, लेकिन लोभ जन्म के साथ होता है। क्रोध तो प्रासंगिक है। कभी परिस्थिति प्रतिकूल होती है तब उठता, है। लेकिन परिस्थिती प्रतिकूल ही इसलिए मालूम पड़ती है कि लोभ भीतर है। क्रोध लोभ

का अनुसरण है । अगर भीतर लोभ न हो तो क्रोध नहीं होगा । जब आपके लोभ में कोई बाधा डालता है, तब क्रोध पैदा होता है । जब आपके लोभ में कोई सहयोगी नहीं होता, विरोधी हो जाता है तब क्रोध पैदा होता है।

लोभ ही क्रोध के मूल में है । गहरेमें देखें तो काम का विस्तार, वासना का विस्तार भी लोभ का विस्तार है । बायोलॉजिस्ट जीवशास्त्री कहते हैं कि मनुष्य की मृत्यु व्यक्ति की तरह निश्चित है, लेकिन व्यक्ति मरना नहीं चाहता । अमरता भी एक लोभ है, मैं रहूँ सदा, मैं कभी मिट न जाऊँ लेकिन इस शरीर को हम मिटते देखते हैं । अब तक कोई उपाय नहीं हुआ इस शरीर को बचाने का । जीवशास्त्री कहते हैं –इसलिए मनुष्य काम वासना को पकड़ता है कि मैं नहीं बचूंगा तो कोई हर्ज नहीं, मेरा कोई बचेगा, मेरा यह शरीर नष्ट हो जायेगा लेकिन इस शरीरके जीवाणु किसी और में जीवित रहेंगे । पुत्र की इच्छा अमरता की ही इच्छा । है । मेरा कोई हिस्सा जीता रहे, बना रहे–यह भी लोभ है ।

काम लोभ का है विस्तार क्रोध, काम और लोभ के मार्ग में आए अवरोध से पैदा हुई वितृष्णा है । मोह जहां जहां लोभ रुक जाता है, जिस जिस पर लोभ रूक जाता है उसका नाम है । समझ लें क्रोध है बाधा, मोह है सहयोग जो मेरे लोभ में बाधा डालता है, उस पर मुझे क्रोध आता है । जो मेरे लोभ में सहयोगी बन जाये उस पर मुझे मोह आता है । लगता है वह मेरा है । उससे ममता जगती है । इसलिए क्रोध, काम अत्यन्त गहरे 'ग्रीद', लोभ के ही विस्तार हैं । जिस व्यक्ति का लोभ मोह, गिर जाता है उसके ये तीनों जिनको कि हम शत्रु कहते हैं, ये भी गिर जाते हैं ।

लोभ के बिना क्रोध करियेगा कैसे ? हाँ यह हो सकता है कि क्रोध के बिना भी लोभ रहे, पर यह असम्भव है कि क्रोध के बिना काम वासना हो । लेकिन काम वासना के बिना भी लोभ हो सकता है । कैसे ? ब्रह्मचर्य में भी लोभ हो सकता है । और मैं और ब्रह्मचारी, और ब्रह्मचारी हो जाऊँ यह भी लोभ का हिस्सा हो सकता है । आत्मा में भी लोभ हो सकता है और परमात्मा में भी लोभ हो सकता है अक्सर ऐसा होता है कि लोभी अपने लोभ के लिए जब संसार हाथ से छूटने लगता है तो दूसरे लोभ की चीजों को पकड़ना शुरू कर देता है । जो यहाँ धन पकड़ता था

वहां धर्म को पकड़ने लगता है; लेकिन कपड़ वही है, लोध का भाव वही है, –संसार खो गया कोई हर्ज नहीं, स्वर्ग न खो जाये । यहां यश न मिला, प्रतिष्ठा न मिली, कोई हर्ज नहीं, उस परलोक में कहीं आनन्द न खो जाय । कहीं ऐसा न हो कि यह संसार तो खो ही दिया दूसरा संसार भी न खो जाय,– ऐसा लोभ पकड़ता है ।

इसलिए मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अधिक लोग बूढ़े होकर धार्मिक होने शुरू हो जाते हैं । लोभ के कारण जवान आदमी से मौत जरा दूर होती हैं, अभी दूसरे लोक की इतनी चिंता नहीं होती; अभी आशा होती है कि यहीं पालेंगे, जो पाने योग्य है । यहीं कर लेंगे इकट्ठा, लेकिन मौत जब करीब आने लगती है, हाथ पैर शिथिल होने लगते हैं, और संसार पर पकड़ ढीली होने लगती है, इन्द्रियों की; तो भीतर का लोभ कहता है यह संसार तो गया ही अब दूसरे को मत छोड़ देना–माया न मिली न राम–कहीं ऐसा न हो कि माया भी गई और राम भी गये – तो अब राम को जोर से पकड़ लो ।

इसलिए बूढ़े लोग मन्दिरों–मस्जिदों की तरफ यात्रा करने लगते हैं। तीर्थ यात्रियों को देखें – बूढ़े लोग तीर्थ की यात्रा करने लगते हैं। ये वे ही लोग हैं जिन्होंने जवानी में तीर्थ के विपरीत यात्रा की है ।

कार्ल गुस्ताफ जुंग ने इस सदी के बड़े से बड़े मनो– चिकित्सक ने कहा है कि मानसिक रूप से रुग्ण व्यक्तियों में, जिन लोगों की मैंने चिकि-चिकित्सा की है उनमें अधिकतम लोग चालीस वर्ष के ऊपर के थे । और उनकी निरन्तर चिकित्सा के बाद मेरा यह निष्कर्ष है कि उनकी बीमारी का एक ही कारण था कि पश्चिम में धर्म खो गया है। चालीस साल के बाद आदमी को धर्म की वैसी ही जरूरत है, जुंग ने कहा, जैसे जवान आदमी विवाह की। जवान को जैसे काम वासना चाहिये वैसे बूढ़े को धर्म-वासन चाहिए ।

जुंग ने कहा है कि अधिक लोगों की परेशानी यह है कि उनको धर्म नहीं मिल रहा है । इसलिए पूर्व में कम लोग पागल होते है पश्चिम में ज्यादा । पूर्व में जवान आदमी भला पागल हो जाय पर बूढ़ा आदमी पागल नहीं होगा । पश्चिम में जवान आदमी पागल नहीं होता, बूढ़ा आदमी पागल हो जाता है । जैसे-जैसे जवानी छूटती है,

वैसे-वैसे रिक्तता आती है, यौवन की वासना खो जाती है, और बुढ़ापे की वासना को कोई जगह नहीं मिलती । मन बेचैन और व्यथित हो जाता है । हमारा बूढ़ा सोचता है कि आत्मा अमर है इससे आश्वासन होता है, हमारा बूढ़ा सोच रहा है कि माला जप रहे हैं, राम नाम ले रहे हैं इसलिए स्वर्ग निश्चित है – इससे उसे सान्त्वना मिलती है । पश्चिम के बूढ़े को कोई भी सान्त्वना नहीं रही । पश्चिम का बूढ़ा बड़े कष्ट में है, बड़ी पीड़ा में है सिवाय मौत के आगे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता उस पार।

उस पार लोभ को कोई मौका नहीं है । जवानी के लोभ के विषय खो गये और बुढ़ापे के लोभ के लिए कोई ऑबजेक्ट, कोई विषय नहीं मिल रहे हैं । मौत का तो लोभ हो नहीं सकता, अमरता का हो सकता है। बूढ़ा आदमी शरीर का क्या लोभ करेगा ? शरीर तो खो रहा है, हाथ से खिसक रहा है । तो शरीर के ऊपर–शरीर के पार कोई चीज हो तो लोभ करे।

लोभ अद्भूत है, विषय बदल ले सकता है । धन पर ही लोभ हो ऐसा आवश्यक नहीं । लोभ किसी भी चीज पर हो सकता है । वासना छूट जाये काम की तो लोभ मोक्ष की वासना बन जाता है। तो लोभ की गहराई को हम समझ लें । क्यों कि लोभ के साथ न्याय नहीं हुआ है जिन्होंने ने भी समझा है लोभ को उन्होंने उसको मूल में पाया है । 'ग्रीड' मूल है । तो लोभ शब्द से हमें समझ में नहीं आता क्योंकि सुन-सुन कर हम बहरे हो गये हैं। लोभ शद्ब में हमें बहुत ज्यादा दिखाई नहीं पड़ता **लोभ का मतलब है कि भीतर मैं खाली हूँ और मुझे अपने को भरना है ।** और यह खालीपन ऐसा है कि भरा नहीं जा सकता । यह खालीपन हमारा स्वभाव है । खाली होना ही हमारा स्वभाव है । भरने की वासना लोभ है । इसलिए लोभ सदा असफल होगा । और कितना ही सफल हो जाये तब भी असफल रहेगा । हम अपने को भर न पायेंगे । हम चाहे धन से, चाहे पद से यश से, ज्ञान से, त्याग से, व्रत से नियम, साधना से–इन सब से भी भरते रहें तो भी अपने को न भर पायेंगे ।

भीतर विराट शून्य है, इस विराट शून्य का नाम ही आत्मा है । जब तक कोई व्यक्ति शून्य होने को राजी नहीं हो जाता, तब तक उस आत्मा का कोई दर्शन नहीं होता । और लोभ हमें शून्य नहीं होने देता। इसलिए वृद्ध लोगों ने लोभ को इतना मूल्य दिया है और इतनी उससे छूटकारे की बात

की है। लोभ हमें शून्य नहीं होने देता और लोभ हमें भटकाये रखता है, दौड़ाए रखता है। और जब तक हम भीतर शून्य न हो जायं, तब तक स्वयं का कोई साक्षात्कार नहीं होता। क्योंकि **शून्य होना ही स्वयं होना है।**

जब मैं भरा हूँ, मैं तो किसी और चीज से भरा हूँ–इसे ठीक से समझ लें–

भरने का मतलब ही किसी और चीज से भरे होना है। हम कहते हैं, बर्तन भरा है। बरतन भरा है–इसका मतलब है किसी और चीज से भरा है। अगर बरतन स्वयं है, तो खाली होगा, भरा नहीं हो सकता। हम कहते हैं कि मकान भरा है–इसका मतलब है किसी और चीज से भरा है। अगर मकान स्वयं है तो खाली होगा, भरा नहीं हो सकता। हम कहते हैं, आकाश बादलों से भरा है – इसका मतलब हुआ बादल कुछ और हैं, जब बादल न होंगे तब आकाश स्वयं होगा।

भराव सदा पराये से होता हैं। स्वयं का कोई भराव नहीं होता। जब भी आप स्वयं होंगे, शून्य होंगे, और जब भी भरे होंगे, किसी और से भरे होंगे। वह 'और'–धन हो, प्रेम हो, मित्र हो, शत्रु हो, संसार हो, मोक्ष हो– इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। 'बट दि अदर' वह हमेशा दूसरा होगा, जिससे आप भरते हैं।

जिसको भरना है, वह दूसरे से भरेगा। जिसको खाली होना है, वही स्वयं हो सकता है। इसका मतलब हुआ : **लोभ स्वयं को भरने की आकांक्षा है। अलोभ, स्वयं के खालीपन में जीने का साहस है।** इसलिए लोभ भयंकर है। लोभ ही हमारा संसार है। मैं सोचता हूँ कि किसी चीज से अपने को भर लूँ; मुझे ऐसा लगता है कि भरे बिना में चैन में नहीं हूँ। आप अकेले में कभी चैन में नहीं होते हैं। हर आदमी तलाश कर रहा है साथी की, मित्र की, क्लब की, समाज की, हर आदमी खोज कर रहा है दूसरे की, अकेला होने को कोई भी राजी नहीं है। अपने साथ किसी को भी चैन नहीं मिलता।

और बड़े मजेदार है– हम लोग !

हम खुद अपने साथ चैन नहीं पाते और सोचते हैं कि दूसरे हमारे साथ चैन पयें, हम खुद अपने को अकेले में बर्दाश्त नहीं कर पाते और हम सोचते हैं कि दूसरे हमें न केवल बर्दाश्त करें, बल्कि अहोभाव मानें ! हम खुद अपने साथ रहने को राजी नहीं हैं, लेकिन हम चाहते हैं दूसरे समझें कि हमारा साथ उनके लिए स्वर्ग है !

अकेला आदमी भागता है जल्दी किसी से मिलने को।

मार्क ट्वैन ने मजाक में एक बहुत बढ़िया बात कही है। मार्क ट्वैन बीमार था, किसी मित्र ने पूछा कि ट्वैन तुम स्वर्ग जाना चाहोगे कि नर्क। मार्क ट्वैन ने कहा कि इसी चिन्तन में मैं भी पड़ा हूं। लेकिन बड़ी दुविधा है –फोर क्लाइमेट हेवेन इज वैस्ट बट फार कम्पनी हैल इज बेटर. अगर सिर्फ स्वास्थ्य सुधार करना हो, तो स्वर्ग में आब-हवा बहुत अच्छी है; लेकिन कम्पनी संग बिलकुल नहीं। महावीर स्वामी बगल में बैठे भी हों वहाँ तो भी कम्पनी नहीं होगी। कम्पनी चाहें तो नर्क। वहां शानदार रंगीले लोग हैं, वहां कम्पनी है, चर्चा है, मजाक है, बात चीत है। मार्क ट्वैन ने तो मजाक में कहा था, लेकिन बात में थोड़ी सचाई है। लेकिन उसे दूसरे पहलू से देखें तो यह मजाक गम्भीर है ज्यादा। असल में जो लोग भीतर नर्क में हैं वो हमेशा कम्पनी की खोज में है। जो लोग भीतर से दुखी हैं वे साथी खोजते हैं। जो भीतर आनंदित है वह अपने साथ ही काफी है। किसी और साथ की कोई जरूरत नहीं।

सुना है मैंने इकहार्ट के बाबत, इकहार्ट एक ईसाई फकीर हुआ। पश्चिम में थोड़े से कीमती आदमी हुए हैं, कुछ बुद्ध और महावीर की हैसियत के, उनमें से वह एक है। इकहार्ट अकेला बैठा है। एक मित्र रास्ते से गुजरता था उसने सोचा बेचारा, अकेला बैठा है ऊब गया होगा। वह मित्र आया और उसने कहा कि अकेले बैठे हो मैंने सोचा, जाता तो हूँ जरूरी काम से लेकिन थोड़ा साथ दे दूँ–'टु गिव यू कम्पनी।'

इक हार्ट ने कहा – हे परमात्मा ! अब तक मैं अपने साथ था, तुमने आकर मुझे अकेला कर दिया। (आइ वाज अप टु नाऊ विथ मी, यू मेड मी एलोन।) तुम्हारी बड़ी कृपा होगी अगर तुम यह अपनी कम्पनी कहीं और ले जाओ, तुम किसी और को साथ दो। हम अपने साथ में काफी हैं, पर्याप्त हैं।

जो अपने भीतर सोचता है कि अपर्याप्त हूं, वह सत्य खोजता है, दूसरे का साथ खोजता है।

लोभ अपने से अतृप्ति है। लोभ का मतलब है – मैं अपने से राजी नहीं हूँ। – कुछ और चाहिये राजी होने के लिए। और जो अपने से राजी नहीं है उसे कुछ भी मिल जाये, वह कभी राजी नहीं हो सकता। क्योंकि जो कुछ भी मिल जाये, वह मुझसे दूर ही रहेगा। मेरे निकट तो मैं ही हूँ, कितनी ही पत्नी सुंदर खोज लें– फासला रहेगा और कितना ही अच्छा मकान बना लें – फासला रहेगा और कितना ही धन पा लें – फासला तो रहेगा। मेरे पास तो मेरे अतिरिक्त कोई भी

नहीं आ सकता। मैं अपने साथ तो रहूंगा ही धन हो कि गरीबी, साथ हो कि अकेला पन – मैं अपने साथ तो रहूंगा ही; और अगर मैं अपने से ही राजी नहीं हूँ, तो मैं जगत में कभी भी राजी नहीं हो सकता।

लोभ का मतलब है, अपने से राजी न होना । किसी और से राजी होने की कोशिश है, लोभ। जब कोई इस कोशिश में सफलता दे देता है, तो मोह बन जाता है । तब हम कहते हैं, इसके बिना मैं नहीं जी सकता – यह है मोह । कहते हैं अगर यह हट गया, तो मेरी जिन्दगी बेकार है–यह है मोह । फिर कोई बाधा डालता है और इस लोभ की खोज में अवरोध बन जाता है, तो क्रोध उठता है कि मिटा डालूंगा इसे, जिससे मोह बनता है अगर वह मिट जाये तो मैं जी न सकूंगा और जिससे हमारा क्रोध बनता है तो हम कहते हैं जब तक यह है, मैं जी न सकूंगा । इसे मिटा डालूंगा ।

मोह और क्रोध, विपरीत पहलू हैं, एक ही घटना के । और यह जो लोभ है हमारे भीतर, दूसरे की तलाश का उसमें हमारी शक्तियों का जो नियोजन है, उसका नाम काम है, उसका नाम 'सेक्स' है ।

हमारे भीतर जो जीवन की ऊर्जा है, जीवन की शक्ति है, जब वह शक्ति दूसरे की तलाश में निकल जाती है, तो काम बन जाती है। यह मजे की बात है, थोड़ी बुरी और थोड़ी भली । हमें ख्याल में नहीं आता है कि जब एक आदमी धन का दीवाना होता है तो धन की दिवानगी उसकी, वैसी ही काम वासना होती है जैसे कोई स्त्री का दिवाना हो । रुपये को हाथ में रख कर वैसे ही देखता है जैसे सुन्दर चेहरे को देखें। तिजोरी को वह ऐसे ही प्रेम से खोलता है जैसे कोई अपनी प्रेयसी को प्रेम से बिठाए । रात सपने में उसे प्रेयसी नहीं आती, तिजोरी आती है । यह धन जो है, इसके लिए 'सेक्स' ऑबजेक्ट' है । यह धन के साथ मैथुन–रत है ।

जो आदमी धन का दिवाना होता है, किसी को प्रेम नहीं कर सकता, धन पर्याप्त है । इसलिए धन का दीवाना पत्नी को प्रेम नहीं कर सकता, बच्चों को प्रेम नहीं कर सकता । सभी प्रेम बड़े इर्ष्यालु हैं, अगर धन से प्रेम हो गया, तो धन दूसरे से प्रेम नहीं होने देगा, प्रेम जेलस है । धन ने अगर पकड़ लिया तो प्रेम नहीं होने देगा ।

फैराडे, एक वैज्ञानिक को कोई पूछता था कि तुमने विवाह क्यों नहीं किया ? उसने कहा, 'जिस दिन विज्ञान से विवाह कर लिया, उस दिन सौतेली पत्नी

लाने की हिम्मत फिर मैंने न जुटाई' । अक्सर, वैज्ञानिक हों, चित्रकार हो कवि हो, संगीतज्ञ हों पत्नी से बचते हैं, नहीं बचते तो पछताते हैं। पछताना पड़ेगा क्योंकि दो पत्नी हो जाएँगी ।

मुल्ला नसरुद्दीन से उसका बेटा पूछ रहा था कि पिताजी कानून ने दो विवाह पर रोक क्यों लगा रखी है? नसरुद्दीन ने कहा कि जो अपनी रक्षा खुद नहीं कर सकते, कानून को उनकी रक्षा करनी पड़ती है। जो अपनी रक्षा खुद नहीं कर सकते कानून को उसकी रक्षा करनी पड़ती है । एक ही पत्नी काफी है । मगर आंदमी कमजोर है दो – चार – दस इकट्ठी कर ले सकता है कानून को उसकी रक्षा करनी पड़ती है । तुम ऐसी मूल मत करना ।

अक्सर जिसको किसी खोज में लीन होना है, वे विवाह से बच जाते हैं । उसका और कोई कारण नहीं है । क्योंकि वह खोज ही उनके लिए सेक्स ऑबजेक्ट है । जो संगीत का दीवाना है, उसके लिए संगीत प्रेयसी है। जो काव्य का दीवाना है कविता उसकी प्रेयसी है । अब दूसरी पत्नी कठिनाई खड़ी कर देगी । और पत्नियाँ इसे भली-भाँति जानती हैं । कभी कभी ऐसी भूल चूक हो जाती है कि कोई कवि शादी कर लेता है, तो पत्नी के बर्दाश्त के बाहर हो जाता है कि वह उसके सामने कविता लिखे बैठ कर। पत्नी मौजूद हो और पति कविता लिखे तो पत्नी छीन कर फेंक देगी उसकी कविता।

वैज्ञानिकों के हाथ से उनके उपकरण छीन लिए गये हैं। दार्शनिकों के हाथ से उनके शास्त्र छीन लिए गये हैं । हमें हैरानी होती है कि आखिर यह पत्नी को क्या हो रहा है । अगर सुकरात अपनी किताब पढ़ रहा है तो उसकी पत्नी उसे किताब पढ़ने क्यो नहीं देती ?

हमें लगता है कि पागल है यह औरत, पागल नहीं है वह । जाने अनजाने वह समझ गई है कि किताब ज्यादा महत्त्वपूर्ण है सुकरात के लिए, पत्नी से भी ज्यादा। जब पत्नी मौजूद है और पति अखबार पढ़ रहा है, तो बात साफ है कि वहाँ महत्वपूर्ण कौन है! तो अगर पत्नी अखबार को छीन कर फाड़कर फेंक देती है तो पत्नी की अन्तःप्रज्ञा उसको ठीक दिशा दे रही है, वह ठीक समझ रही है।

जो व्यक्ति जिसमें लीन हो जाता है, वही उसके लिए काम विषय हो जाता है। लीनता, काम-विषय का लक्षण है । इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आपकी लीनता पुरुष या स्त्री के प्रति है या नहीं। आपकी लीनता किसी भी चीज के प्रति हो

जायें तो जो सम्बन्ध है, वह काम का है।

लोभ, काम की ही यात्रा पर निकल जाता है – फिर चाहे धन हो चाहे यश, चाहे पद हो चाहे पुण्य – इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

लोभ का एक लक्षण है – अपने से बाहर जाना। दूसरे की खोज। दूसरे के बिना जीना मुश्किल। दूसरा स्वयं से ज्यादा महत्वपूर्ण है। दूसरे की महिमा ज्यादा स्वयं की महिमा गौण है। और जिसको स्वयं की महिमा गौण है वह कहीं भी भटके, भिखारी ही रहेगा। इसलिए लोभी सदा भिखारी है। सम्राट हो जाये तो भी, उसका भिक्षा पात्र खाली ही रहता है। और फिर लोभ से पैदा होती है सारी संततियाँ क्रोध की, मोह की, इसलिए लोभ पाप का मूल कहा है।

एक मित्र ने पूछा है कि ज्यादा धन कमाकर ज्यादा दान करें तो ? धन से लोभ का सम्बन्ध नहीं है दान से भी लोभ का सम्बन्ध नहीं है लोभ का संबंध ज्यादा से है। ज्यादा धन कमाने वाले, ज्यादा में अटके हैं, कल ये ज्यादा दान भी कर सकता है तब भी ज्यादा में ही अटका होगा।

दान अच्छा है, लेकिन उसका यह मतलब नहीं कि ऐसे उपाय करना चाहिये। माफी मांगना बहुत अच्छा है, लेकिन माफी माँगना अच्छा है मात्र प्रायश्चित्त की तरह, माफी मांगना कोई पुण्य नहीं है। माफी केवल पाप का प्रायश्चित्त है।

दान कोई पुण्य नहीं है केवल वह जो इकट्ठा किया था धन, केवल उसका प्रायश्चित्त है। दान की कोई विधायकता नहीं है, कोई पाजिटिविटी नहीं है। इसलिए जो कहते हैं कि खूब दान करो, अगर उनका मतलब यह है कि पहले खूब धन इकट्ठा करो और फिर दान करो तो यह तो गणित के साथ बहुत तरकीब होगी। पहले खूब पाप करो फिर पुण्य करो।

एक पादरी अपने स्कूल के बच्चों से पूछ रहा था, उसने बच्चों को बहुत समझाया था कि मुक्ति के लिये क्या आवश्यक है – सालवेशन के लिए, छुटकारे के लिए जीसस की प्रार्थना पूजा, भगवान का स्मरण यह सब जरूरी है, जिसको मुक्त होना है। फिर उसने सब समझाने के बाद पूछा कि मुक्त होने के लिए सबसे जरूरी चीज क्या है ? एक छोटे से बच्चे ने हाथ उठाया, हाथ हिलाया, वह पादरी बहुत खुश हुआ। वह बच्चा खड़ा हुआ। उसने पूछा कि क्या है सबसे जरूरी चीज ? उसने कहा, 'पाप करना।'

जब तक पाप न करो छूटना किससे है। छुटकारे का क्या अर्थ है ? छुटकारे के लिए पाप करना पहली जरूरत है। दान करने के लिए पहले धन की जरूरत है।

लेकिन यह जाल समझने जैसा है। जो आदमी ज्यादा धन इकट्ठा कर रहा है, वह दान कर कैसे पायेगा ? जितना 'ज्यादा' पर उसका जोर होगा उतना ही छोड़ना मुश्किल होगा क्योंकि ज्यादा पकड़ने की आदत हो जायेगी। तो वह दान कर सकता है अगर यह दान इनवेस्टमेंट हो। अगर उसको यह पक्का भरोसा हो जाये कि जितन मैं देता हूं, उससे ज्यादा मुझे मिलेगा तो वह दान कर सकता है। उसे पक्का हो जाया कि यहाँ देता हूं और वहाँ स्वर्ग में मिलेगा।

आजकल लोग दान करने में उतने तत्पर नहीं दिखाई पड़ते—उसका कारण स्वर्ग संदिग्ध हो गया है और कोई कारण नहीं है। उतना भरोसा अब नहीं रहा साफ-साफ कि स्वर्ग है भी। अगर पुराने लोग दानी थे तो आप यह मत समझना कि आपसे कम लोभी थे। स्वर्ग सुनिश्चित था, उसमें कोई शक की बात नहीं थी, यहां देना और वहां लेना, नगद था, उसमें कहीं कोई उधारी का मामला न था। अब सब गड़बड़ है यहां हाथ से जाता हुआ नगद मालूम पड़ता है वहां स्वर्ग का मिलता हुआ नगद नहीं है।

जिन्होंने दान किये हैं, पुराने लोगों ने, लोभ के कारण ही किये हैं, लोभ के विपरीत नहीं। लोभ के विपरीत दान बड़ी और बात है। लोभ के कारण दान और बड़ी बात है। क्या फर्क होगा दोनों में ? एक फर्क होगा कि 'ज्यादा' मौजूद नहीं रहेगा दान में, अगर यह लगता है कि ज्यादा दान करुं तो लगता है कि ज्यादा पा लूं। यह ज्यादा की दौड़ क्या है ? यह दौड़ कल थी कि ज्यादा धन इकट्ठा करुं अब यही दौड़ है कि ज्यादा दान करूँ। क्यों ? तुम ज्यादा के बिना क्यों नहीं हो सकते हो। यह ज्यादा, यह ज्यादा बुखार आवश्यक नहीं है, और जब कोई व्यक्ति ज्यादा से मुक्त हो जाता है तो शान्त हो जाता है, तब लोभ शान्त हो जाता है।

तो वस्तुतः जिन्होंने दान किया है उन्होंने कुछ पाने के लिए दान नहीं किया है वो सिर्फ प्रायश्चित है। जो व्यर्थ इकट्ठा कर दिया था वह वापस लौटा दिया है उससे आगे कोई पुण्य मिलने वाला नहीं है, पीछे के लिए किये गये पाप का निपटारा है। यह सिर्फ हिसाब साफ कर लेना है और कुछ भी नहीं।

एक मित्र ने पूछा है— पाने योग्य चीज को अधिकतर मात्रा में पाने की चेष्टा में भी क्या लोभ है ?

असल में पाने योग्य क्या है ? जो पाने योग्य है, वह भीतर पहले से ही मिला हुआ है। उसका कोई लोभ नहीं किया जा सकता। और जो भी हम पाने योग्य मानते हैं, वह पाने योग्य नहीं होता। लोभ पहले आ जाता है इसलिए पाने योग्य मालूम पड़ता

है । इसे थोड़ा ठीक से समझ लें । हम कहते हैं– जो पाने योग्य है, उसके लोभ में क्या हर्ज है ! लेकिन पाने योग्य होता ही इसलिए है कि लोभ ने पकड़ लिया है, नहीं तो पाने योग्य नहीं होता । जो चीज आपको पाने योग्य लगती है, आपके पड़ोसी को पाने योग्य नहीं लगती । पड़ोसी का लोभ कहीं और है, आपका लोभ कहीं और है– –यही फर्क है ।

कोई चीज अपने आप में पाने योग्य नहीं है । जिस दिन आपका लोभ उस चीज से जुड़ जाता है वह पाने योग्य दिखाई पड़ने लगती है । जब तक लोभ नहीं जुड़ा था, वह पाने योग्य नहीं थी । पाने योग्य का मतलब ही यह है कि लोभ जुड़ गया । तब तो एक दुष्टचक्र (व्हिसियस सर्कल) पैदा हो जाता है । लोभ पहले जुड़ गया इसलिए चीज पाने योग्य मालूम पड़ती है । और फिर हम कहते हैं कि जो पाने योग्य है, उसके लोभ में हर्ज क्या है, वह लोभ तो दूसरा है । पर हम धोखा दे रहे हैं । पहले ही लोभ आ गया था । ऐसा समझें तो आसान हो जायेगा । हम कहते हैं सुन्दर व्यक्ति पाने योग्य मालूम पड़ता है । लेकिन सुन्दर क्यों मालूम पड़ता है ? आप जब कहते हैं फलां व्यक्ति सुन्दर है तो आप सोचते हैं, सौन्दर्य कोई गुण है जो वहां व्यक्ति में मौजूद है । लेकिन मनस्विद कहते हैं, जिसको आप पाना चाहते हैं वह आपको सुन्दर दिखाई पड़ता है । यह तो हमारे अनुभव की बात है । क्योंकि जो आज हमें सुन्दर दिखाई पड़ता है जरूरी नहीं कि कल भी सुन्दर दिखाई पड़े ।

जो हमें सुन्दर दिखाई पड़ता है वह हमारे मन की तरकीब है, हम कहते हैं सुन्दर है इसलिए हम पाना चाहते हैं, असलियत और है । हम पाना चाहते हैं इसलिए वह सुन्दर दिखाई पड़ता है । हमारी चाह पहले है और जहाँ हमारी चाह जुड़ जाती है वहीं सौन्दर्य दिखाई पड़ने लगता है । जहां हमारा लोभ जुड़ जाता है वही पाने योग्य मालूम पड़ने लगता है ।

पाने योग्य क्या है ? **पाने योग्य केवल वही है जो मिला ही हुआ है ।** जिसे पाने की कोई जरूरत ही नहीं है । और जिसे भी पाने की जरूरत है वह पाने योग्य ही नहीं है । यह कन्ट्राडिक्टरी मालूम पड़ेगा–विरोधी मालूम पड़ेगा कि जो पाने योग्य मालूम पड़ता है वह पाने योग्य है ही नहीं । क्योंकि वह पराया है । उसे पाना पड़ेगा और जिसे हम पा लेंगे उसे छोड़ना पड़ेगा । संसार का इतना ही अर्थ है कि कितना ही पाओ, उसे छोड़ना ही पड़ेगा । **सिर्फ एक चीज मुझसे नहीं छीनी जा सकती, वह मेरा होना है ।** उसे मैंने कभी पाया नहीं, वह मुझे मिला ही हुआ है । 'आलरेडी गिवन ।' जब भी मैंने

जाना, वह मुझे मिला हुआ है । उसे मैंने कभी पाया नहीं बाकी आपने जो भी चीजें पा लीं वह सब छिन जायेंगी । जो पाया जाता ह वह छिन जाता है । क्योंकि वह हमारा नहीं है, इसीलिए तो पाना पड़ता है ।

एक, जो छिन जाता है, जो हमारा नहीं है, वह हमारा नहीं हो सकता । जो मेरा है, उसे मैंने कभी पाया नहीं वह मैं ही हूं । इसलिए धर्म की दृष्टि में पाने योग्य सिर्फ एक बात है और वह स्वयं का स्वरूप । उसको हम आत्मा कहें परमात्मा कहें, मोक्ष कहें – यह शब्दों का भेद है । बाकी कोई भी चीज पाने योग्य नहीं है । लोभ दिखाता है यह पाने योग्य है, वह पाने योग्य है । लोभ दिखा देता है, तो वासना दौड़ पड़ती है । सफलता मिल जाती है, मोह बन जाता है । असफलता मिल जाती है, क्रोध बन जाता है । **इसलिए लोभ अधर्म का मूल है ।**

गरीबी के कष्ट : अमीरी का दुख

संकलन : स्वामी योग चिन्मय

(पर्युषण व्याख्यानमाला, बम्बई में दिनांक ९ सितम्बर, १९७२ को भगवान श्री रजनीश द्वारा दिये गये प्रवचन का एक अंश।)

गरीब आदमी कष्ट में होता है, दुख में नहीं होता। अमीर आदमी कष्ट में नहीं होता, दुख में होता है।

कष्ट का मतलब है–अभाव और दुख का मतलब है–भाव।

कष्ट हम उस चीज से उठाते हैं, जो हमें नहीं मिली है। जिसमें हमें आशा है कि मिल जाये तो सुख मिलेगा। इसलिए गरीब आदमी हमेशा आशा में होता है कि सुख मिलेगा; आज नहीं कल, कल नहीं परसों; इस जन्म में नहीं, अगले जन्म में; मगर सुख मिलेगा।

आशा उसके भीतर एक थिरकन बनी रहती है। कितना ही कष्ट हो, अभाव हो वह झेल लेता है इस आशा के सहारे कि आज है कष्ट, कल होगा सुख; आज को गुजार देना है। कल की आशा उसे खींचे चली जाती है। फिर एक दिन यही आदमी अमीर

हो जाता है । अमीर का मतलब – जो – जो इसने सोचा था आशा में, वह सब हाथ में आ जाता है ।

इस जगत में इससे बड़ी कोई दुर्घटना नहीं है, जब कि आशा आपके हाथ में आ जाती है और तब तत्क्षण सब फ्रस्ट्रेशन हो जाता है, सब विषाद हो जाता है; क्योंकि इतनी आशाएं बांधी थीं इतने लम्बे-लम्बे सपने देखे थे, वे सब तिरोहित हो जाते हैं ।

हाथ में कोहिनूर आ जाता है, सिर्फ पत्थर का एक टुकड़ा मालूम पड़ता है । सब आशाएं खो जाती हैं कि अब क्या होगा ?

अमीर आदमी इस दुख में पड़ जाता है कि अब क्या होगा ! अब क्या करना है ? कोई आशा उसे आगे नहीं दिखाई पड़ती । धन बड़े विषाद में गिरा देता है । कष्ट में नहीं दुख में गिरा देता है ।

इसलिए दुख जो है, वह समृद्ध आदमी का लक्षण है । कष्ट जो है, वह गरीब आदमी का लक्षण है ।

कष्ट और दुख, भाषा-कोष में भला उनका एक ही अर्थ लिखा हो, जीवन के कोष में बिल्कुल विपरीत अर्थ है । और मजा यह है कि कष्ट अभी इतना कष्टपूर्ण नहीं है, जितना दुःख; क्योंकि दुख आन्तरिक हताशा है, और कष्ट बाहरी अभाव है; लेकिन भीतर आशा भरी रहती है ।

आपको पता नहीं है और आप खोज रहे हैं कि ईश्वर का दर्शन हो जाये । ईश्वर का दर्शन हो जाये किसी दिन, तो उससे बड़ा दुख फिर आपको कभी न होगा – अगर आपने सारी आशाएं इसी पर बांध रखी हैं कि ईश्वर का दर्शन हो जाये ।

मान लो कि किसी दिन ईश्वर आपसे मजाक कर दें (ऐसे वह कभी ऐसा करता नहीं ।) और मोर-मुकुट बांध कर बांसुरी बजाता हुआ, आकर आपके सामने खड़ा हो जाये, तो थोड़ी बहुत देर देखियेगा; फिर ! फिर क्या करियेगा ? फिर करने को क्या है ? फिर आप उससे कहेंगे कि अब आप तिरोधान हो जाओ । अब आप फिर पहले जैसे लुप्त हो जाओ, ताकि हम खोज सकें ।

रवीन्द्रनाथ ने लिखा है कि ईश्वर को खोजा मैंने बहुत-बहुत जन्मों तक । कभी किसी दूर तारे के किनारे उसकी झलक दिखाई पड़ी, लेकिन जब तक मैं अपनी धीमी सी गति से चलता-चलता वहां तक पहुँचा, तब तक वह दूर निकल गया था, कहीं और जा चुका था । कभी किसी सूरज के पास उसकी छाया दिखी और मैं जन्मों-जन्मों उसको खोजता रहा । खोज बड़ी आनन्दपूर्ण थी, क्योंकि सदा वह दिखाई पड़ता था कि कहीं है । फासला था । फासला पूरा हो सकता था । फिर एक दिन बड़ी मुश्किल

हो गयी । मैं उसके द्वार पर पहुंच गया; जहां तख्ती लगी थी कि भगवान यहीं रहता है । चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ । छलांग लगा कर सीढ़िया चढ गयाँ । हाथ में सांकल लेकर ठोकने जाता ही था दरवाजे पर . . .

(पुराने किस्म का दरवाजा होगा । कालबेल नहीं रही होगी । रवींद्रनाथ ने कविता लिखी है, उसको काफी समय हो गया है । कालबेल होती, तो वे मुश्किल में पड़ जाते, क्योंकि वह एकदम से बज जाती ।)

. . . . सांकल हाथ में लेकर ठोकने ही जाता था, तभी मुझे ख्याल आया कि अगर आवाज मैंने कर दी और दरवाजा खुल गया और ईश्वर सामने खड़ा हो गया, तो फिर !

फिर क्या करियेगा ? फिर तो सब अन्त हो गया । फिर तो मरण ही रह गया हाथ में । फिर तो खोज न बची, क्योंकि कोई आशा न बची । फिर कोई भविष्य न बचा, क्योंकि कुछ पाने को न बचा ।

ईश्वर को पाने के बाद और क्या पाईयेगा ? फिर मैं क्या करूंगा ? फिर मेरा अस्तित्व क्या होगा ? सारा अस्तित्व तो तनाव है आशा का, आकांक्षा का, भविष्य का । जब कोई भविष्य नहीं, कोई आशा नहीं कोई तनाव नहीं, तो फिर मैं क्या करूंगा ? मेरे होने का क्या प्रयोजन है ? फिर मैं होऊंगा भी कैसे ? वह होना तो, बहुत बदतर हो जायेगा ।

रवीन्द्रनाथ ने लिखा है, धीमे से छोड़ दी मैंने वह सांकल कि कहीं आवाज हो ही न जाये । पैर के जूते निकाल कर हाथ में ले लिये कहीं सीढ़ियों से उतरते वक्त पग-ध्वनि सुनाई न पड़ जाये और जो मैं भागा हूं उस दरवाजे से, तो फिर मैंने लौट कर नहीं देखा । हालांकि अब भी मैं फिर ईश्वर को खोज रहा हूँ और मुझे पता है कि उसका घर कहाँ है । उस जगह भर को छोड़ कर, सब जगह खोजता हूँ ।

बहुत मनोवैज्ञानिक हैं, सार्थक है, बात अर्थ-पूर्ण है । आप जहां जहां सम्मोहन रखते हैं; सम्मोहन का अर्थ है;—जहाँ जहाँ आप सोचते हैं कि सुख छिपा है, वहाँ-वहाँ पहुंच कर दुखी होंगे; क्योंकि वह आपकी आशा थी । जगत का अस्तित्व नहीं था । वह जगत का आश्वासन नहीं था । आपकी कामना थी । वह आपने ही सोचा था । वह आपने ही कल्पित किया था । वह सुख आपने आरोपित किया था । दूर-दूर रहना, उसके पास मत जाना; नहीं तो वह नष्ट हो जायेगा । जितने पास जायेंगे, उतनी मुसीबत होने लगेगी ।

इन्द्र-धनुष्य जैसा है सुख । पास जायें, तो खो जाता है; दूर रहें, तो बहुत रंगीन दिखाई पड़ता है ।

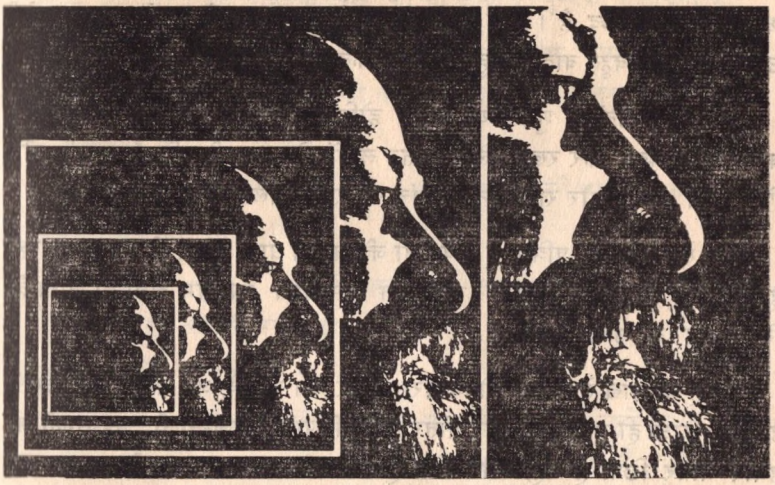

शिवनेत्र

संकलन : मा योग क्रांति

[गीता–ज्ञान–सत्र के ११ वे अध्याय के अन्तर्गत, कृष्ण-अर्जुन सम्वाद व विराट दर्शन पर भगवान श्री रजनीश के द्वारा दिए गये प्रवचन का अंश]

तीसरी आंख (शिवनेत्र) दो प्रकार से सक्रिय हो सकती है।

एक तो साधक चेष्ठापूर्वक अपनी दोनो आंखों की ज्योति को भीतर खींच ले, आंख को बन्द करके। वर्षों की लम्बी साधना है, आंखों को निर्ज्योति करने की– आंख से हमारी जो चेतना बह रही है बाहर उसे आंख बन्द करके भीतर खींच लेने की।

इसे कबीर ने आंख को उल्टा कर लेना कहा है मतलब यह है कि धारा जो बाहर बह रही है वह भीतर बहने लगे।

आपने कृष्ण की प्रेयसी 'राधा' का नाम सुना है। आपको ख्याल न होगा कि वह 'धारा' का उल्टा शब्द है। कृष्ण के समय के जो भी शास्त्र हैं उसमें राधा का कोई उल्लेख नहीं है। बहुत बाद में, बहुत बाद की किताबों में राधा का उल्लेख शुरु हुआ।

जिन्होंने उल्लेख शुरु किया, वे बड़े होशियार लोग थे। उन्होंने इस प्रतीक में बड़ा रहस्य छिपा कर रखा। लेकिन तब लोगों ने राधा की मूर्तियाँ बनाई और फिर लोग कृष्ण और राधा बन कर मंच पर रास–लीला करने लगे।

राधा एक यौगिक प्रक्रिया है। वह जो जीवन की धारा बाहर की तरफ बह रही है जिस दिन उल्टी हो जाती है, उस दिन उस धारा का नाम राधा हो जाता है, सिर्फ शब्द को उल्टा करने से।

वह जो आंख से हमारी जीवनधारा बाहर जा रही है, जब भीतर आने लगती है तो वह राधा हो जाती है। और भीतर हमारे छिपा है **कृष्ण-साक्षी, वह साक्षी जो हमारे भीतर छिपा है वह, और जब हमारी जीवन धारा, उसकी राधा बन जाती है, उसके चारों तरफ नाचने लगती है, बाहर नहीं जाती, तब भीतर एक और रास शुरु हो जाता है।**

उस रास की बात और है, और हम नौटंकी है कर रहे हैं मंच वगैरह सजा कर उधम करने के बहुत उपाय हैं। और आदमी हर जगह से उपद्रव खोज लेता है, उपद्रव करने के बहुत उपाय हैं। और अपने को भरमा लेता है, सोचता है, बात खतम हो गई।

हर राधा हमारी जीवनधारा का नाम है। जब उल्टी होती है, वापस लौटने लगती है स्रोत की तरफ तब **धारा** का **राधा** हो जाता है। अभी जा रही है बाहर की तरफ, जब जाने लगे भीतर की तरफ, अन्तर्यात्रा पर जाए तब तो रास भीतर घटित होता है। परम रास–वह जो परम जीवन का अनुभव और आनन्द, वह जो एक्सटेसी, वह जो नृत्य है भीतर, उसकी बात है।

तो एक तो उपाय है कि हम चेष्टा से, श्रम से, योग से, तन्त्र से, साधन से, विधि से, मैथड से, सारी जीवन चेतना को भीतर खींच लें।

एक दूसरा उपाय है भक्त का समर्पित होने वाले का कि वह समर्पण करे। जिस व्यक्ति की जीवन-धारा भीतर की तरफ दौड़ रही हो, उसको समर्पण कर दे। तो जैसे अगर आप एक चुम्बक के पास एक साधारण लोहे का टुकड़ा रख दें तो चुम्बक

की जो चुम्बकीय धारा है, जो मैग्नेटिक फिल्ड है, उस लोहे के टुकड़े को भी मैग्नेटाइज्ड कर देगी। उस लोहे के टुकड़े को भी तत्काल चुम्बक बना देगा।

ठीक वैसे ही अगर कोई व्यक्ति उस व्यक्ति की तरफ अपने को पूरी तरह समर्पित कर दे जिसकी धारा भीतर की तरफ जा रही है तो तत्क्षण उसकी धारा भी उल्टी होकर बहने लगती है।

अर्जुन ने न तो कोई साधना की अभी। अभी साधना करने का उपाय भी नहीं। अभी तो यह चर्चा ही चलती थी।

और अचानक अर्जुन ने कहा कि अगर आप समझें मुझे योग्य, समझें शक्य, अगर यह सम्भव हो, आपकी मरजी हो तो दिखा दें।
और कृष्ण ने कहा ——— देख।

इन दो वक्तव्यों के बीच में जो घटना घटी है वह मैग्नेटाइजेशन है। वह मैग्नेटाइजेशन है——अर्जुन का यह समर्पण भाव कि आप जो कहते हैं, वह ठीक ही है, मैं तैयार हूं, अब मेरा कोई विरोध नहीं, अब मेरा कोई असहयोग नहीं, अब मैं सहयोग के लिए राजी हूं, अब मेरी समग्र स्वीकृति है।

कृष्ण ने कहा ——— देख। इन दोनों के बीच जो घटना घटीं उसका कोई उल्लेख गीता में नहीं है, हो भी नहीं सकता। उसका क्या उल्लेख हो सकता है? वह घटना वह घटी कि समर्पण के साथ वह जो कृष्ण के भीतर बहती हुई धारा थी, अर्जुन की धारा उसके साथ भीतर की तरफ लौट पड़ी। **कृष्ण खो गये और अर्जुन ने देखना शुरु कर दिया।**

तंत्र है योग

सं. स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्त्व

[गीता ज्ञान यज्ञ के अंतर्गत छठवें अध्याय पर दिनांक ११ मई १९७१ को अहमदाबाद में भगवान श्री द्वारा दिया गया प्रवचन]

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति में मति :
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ।। ३६ ।।
क्योंकि मन को वश में न करने वाले पुरुष द्वारा योग दुष्प्राप्य है अर्थात प्राप्त होना कठिन है और स्वाधीन मन वाले प्रयत्नशील पुरुष द्वारा साधन करने से प्राप्त होना सहज, है, यह मेरा मत है ।

कृष्ण ने दो तीन बातें इस सूत्र में कही हैं, वे समझने जैसी हैं। एक, मन को वश में न करने वाले पुरुष द्वारा योग की उपलब्धि अति कठिन है। असंभव, नहीं कहा है। कहा है – बहुत मुश्किल है, असंभव नहीं कहा। नहीं ही होगी, ऐसा नहीं कहा, होनी अति कठिन है, ऐसा कहा है। तो उनकी इस बात को समझ लेना जरूरी है।

दूसरी बात, कृष्ण ने कही, मन को वश में कर लेने वालों के लिए सरल है, सहज है –उपलब्धि योग की।

और तीसरी बात कही ऐसा मेरा मत है। ऐसा नहीं कहा, ऐसा सत्य है। ऐसा कहा, दिस इस माइ ओपीनियन, ऐसा मेरा मत है। ये तीन बातें इस श्लोकमें ख्याल में ले लेने जैसी हैं।

पहली बात तो यह है, जो बहुत अजीब मालूम पड़ेगी, कि कृष्ण ऐसा कहें। कहना था कि मन को जो वश में नहीं करता उसके लिए योग की उपलब्धि असंभव है, इम्पासिबल है, नहीं होगी। लेकिन कृष्ण कहते हैं, कठिन है, असंभव नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि कठिन है, लेकिन किसी स्थिति में किसी व्यक्ति के लिए मन को विना वश में किऐ ही उपलब्धि संभव हो सकती है। कठिन है, लेकिन संभव हो सकती है। कठिन है, लेकिन फिर भी हो सकती है। मन को वश में करने वाला कैसे उपलब्धि को प्राप्त होता है, उसकी हमने बात की। अब थोड़ा हम, उस थोड़े से अल्प वर्ग के सम्बन्ध में बात कर लें, जिसकी वजह से कृष्ण असंभव न कह सके।

कभी करोडों में एकाध आदमी ऐसा होता है जो मन को बिना वश में किये योग को उपलब्ध हो जाता है, बहुत रेयर फिनामिना है, बहुत करीब करीब न घटने वाली घटना है, लेकिन घटती है। खुद कृष्ण भी उन्हीं लोगों में से एक हैं। इसलिए कृष्ण ने जानकर कहा है बहुत समझकर कहा है। खुद कृष्ण भी उन्हीं लोगों में से एक है। इसलिए अर्जुन जरूर ही पूछ लेता कि हे मधुसूदन, आपको कभी आसन लगाये नहीं देखा, आपको कभी प्राणायाम करते नहीं देखा, आपको कभी प्रभु स्मरण नहीं करते देखा, आपको किसी तपश्चर्या में से गुजरते नहीं देखा। जिस योग साधन की आप बात कर रहे हैं। जिस अभ्यास की आप बात कर रहे हैं, वह कभी आपके आस पास दिखायी नहीं ड़ता और जिस वैराग्य की आप बात कर रहे हैं उसका तो आपके आस पास कोई भी अन्दाज नहीं मिलता, अनुमान नहीं लगता। मोरपंख लगाकर, बांसुरी बजाकर आप नाचते हैं तब सुन्दरतम दृश्य होता है।– गोपियां आपके चारों तरफ रास करती है। वैराग्य कहीं दिखायी नहीं पड़ता मधुसूदन, अर्जुन निश्चित ही ऐसा पूछता, लेकिन अर्जुन को पूछने का उपाय कृष्ण ने नहीं छोड़ा इसलिए अर्जुन ने नहीं पूछा। क्योंकि कृष्ण ने कहा, बहुत कठिन है अर्जुन, असंभव नहीं है।

उस थोड़े से वर्ग में जिसमें कृष्ण भी आते हैं और कभी एकाध दो

आदमी जा पाते हैं सदियों में । इस छोटे से वर्ग की भी हम बात कर लें, क्योंकि उसका भी खतरा बड़ा है । क्योंकि जो उस वर्ग में नहीं आता, वह अगर सोच ले कि यह होगा कठिन, लेकिन हम कठिन मार्ग से ही जायेंगे तो बहुत डर यह है कि वह कभी नहीं पहुंचेगा। भटकेगा, व्यर्थ समय नष्ट करेगा और जीवन को न बदल पायेगा। ऐसा हुआ है इस देश में ।

तंत्र के सभी सूत्र उल्टे है

इस देश ने बड़े गहरे प्रयोग किये हैं । तन्त्र उन प्रयोगों में से है, जो उनके लिए है वस्तुतः, जो मन को वश में न करें। इसलिए तन्त्र जब इजोटेरिक था, कुछ थोड़े से लोग उस पर प्रयोग करते थे, तब वह बड़ी अद्भुत प्रक्रिया थी । लेकिन और लोगों को भी लगा कि यह तो बहुत अच्छा है, मन को वश में ही न करना पड़े और योग उपलब्ध हो जाय !

तंत्र के तो सभी सूत्र उल्टे हैं। यह जो थोड़ी सी जगह छोड़ी है कृष्ण ने, वह तन्त्र के लिए छोड़ी है। उसकी बात करनी उन्होंने उचित नहीं समझी है, क्योंकि उसकी बात करनी सदा ही खतरे से भरी है। क्योंकि हम सबका मन ऐसा होगा कि अपने को अपवाद मान लें, और हम सबका मन ऐसा होगा कि जब मन को बिना वश में किये हो सकता है, तो होगा लंबा मार्ग, लेकिन यही ज्यादा आनन्दपूर्ण रहेगा। मन को वश में ही न करें और पहुंच भी जायेंगे योग में । दूसरे न पहुंचते होंगे, हम तो पहुंच ही जायेंगे ।

इसलिए तन्त्र जब व्यापक हुआ तो अति कठिनाई उसने पैदा की। हजारों लोग यह सोचते हैं—क्योंकि तंत्र कहता है। तन्त्र के पंच महात्म्य सिद्ध हैं। **वह कहता है, पांच 'मा' का जो सेवन करेगा—सेवन, त्याग नहीं, वही योग को उपलब्ध होगा। मरा का त्याग नही सेवन। मैथून का त्याग नहीं सेवन। मांस का त्याग नहीं सेवन। जो उसको भोगेगा वही मोक्ष को उपलब्ध होगा।** यह बहुत ही छोटा सा अल्प वर्ग है जिसके लिए यह बात बिल्कुल सही है।

तंत्र का सारा जोर होश पर है

और ध्यान रहे, वह अल्प वर्ग अति कठिन मार्ग से गुजरता है । दिखता सरल है, शराब पीने से ज्यादा सरल और क्या हो सकता है ? शराबी पीकर रात को सड़को पर पड़े हैं। शराब पीने से ज्यादा सरल क्या होगा ! लेकिन तन्त्र की प्रक्रिया बहुत कठिन है, अति दूभर है । तन्त्र कहता है,

शराब पीना, लेकिन बेहोश मत होना । यह साधना है । शराब पिये जाना और बेहोश मत होना। अगर बेहोश हो गये तो साधना का सूत्र टूट गया। तो शराब पीना और बेहोश मत होना। शराब पीना और होश को कायम रखना। हम तो होश बिना शराब पिये कायम नहीं रख पाते, शराब पीकर कायम रख पायेंगे ? बिना पिये, पिये की हालत रहती है दिन रात। जरा में होश खो जाता है।

तन्त्र कहता है, शराब पीना, उसकी मनाही नहीं है। लेकिन होश कायम रखना।

तो तन्त्र की अपनी विधि है कि जब शराब पियो, कितनी ही मात्रा में पियो, कहीं भी रुक जाओ, होश को कायम रखो। फिर धीरे धीरे मात्रा बढ़ाते जाओ। वर्षों की लम्बी यात्रा में वह घड़ी आती है कि कितनी ही शराब कोई पी जाय, होश कायम रहता है। फिर तो तन्त्र को यहां तक करना पड़ा कि जब कोई शराब काम नहीं करती है। तब सांप पालने पड़ते हैं। अभी भी आसाम में कुछ तांत्रिक सांप पालते हैं और जीभ पर सांप से कटायेंगे और साधना की आखिरी कसौटी यह होगी कि सांप काट ले और होश कायम रहे।

तंत्र बहुत साहसियों का मार्ग है

है तो प्रक्रिया अद्भुत और बड़ी दूभर। तन्त्र नहीं कहता शराब छोड़ने को तन्त्र बहुत साहसियों का मार्ग है।

वे कहते हैं, हम छोड़ेंगे नहीं, अगर कीचड़ में से कमल हो सकता है तो हम शराब में से होश पैदा करेंगे। और बेहोशी में अगर होश न रह सका, तो होश की कीमत कितनी है। और अगर शराब पीकर सारी बुद्धि नष्ट हो जाय तो ऐसी बुद्धि को बचाने में कितना सार है।

तंत्र कहता है, मैथुन का हम त्याग न करेंगे, ब्रह्मचर्य हम न साधेंगे। हम तो मैथून में प्रवेश करेंगे और वीर्य को अ-स्खलित रखेंगे।

बहुत कठिन है मामला, पर तंत्र ने इसके प्रयोग किये। विधि इसकी गुप्त थी - साधारणतः वह समूह में नहीं किये जा सकते थे। पर धीरे धीरे खबर फैलनी शुरू हुई, और उनको भी पता चल गया जो शराब पीकर नालियों में पड़े रहते थे, और उन्होंने सोचा कि हम भी तंत्र की साधना क्यों न करें ? यह तो बहुत उचित है, फिर कोई यह भी नहीं कह सकता कि शराब पीना पाप है, क्योंकि शराब पीना पुण्य हो गया। तो नाली में शराब पीकर जो पड़ा था, उसने जब शराब पीकर तन्त्र की साधना की तो मंदिर में नहीं पहुंचा

वह और नाली में, और नाली में पहुंचा । और मैथून तो सारा जगत कर रहा है । तंत्र ने जब कहा, मैथुन में ही उपलब्धि हो जायेगी परमात्मा की कहीं भागने की जरूरत नहीं त्यागने की जरूरत नहीं। लोगों ने कहा, ठीक है, कहीं कुछ करने की जरूरत नहीं है, मैथुन तो हम कर ही रहे हैं, लेकिन तन्त्र की शर्त है ।

शराब अछूती गुजर जाती है

एक घटना मुझे याद आती है । एक तांत्रिक के पास एक त्यागी साधु गया । वहां बड़ी बड़ी मटकियों में भरी हुई शराब रखी थी और एक युवा तांत्रिक बैठकर ध्यान कर रहा था । साधु बहुत घबड़ाया, शराब की बास चारों तरफ थी । उस साधु ने कहा कि मटके मटके भर कर शराब कौन पीता है यहां ? उस तांत्रिक गुरू ने कहा कि यह जो युवक बैठा है, इसके लिए रखी है । एक मटका तो यह एक ही गटक में पी जाता है एक साथ। उस आदमी ने कहा कि मुझे भरोसा नहीं आता। फिर इसकी हालत क्या होती है ? उसके गुरू ने कहा, हालत वही रहती है जो थी। शराब अछूती गुजर जाती है, आर पार निकल जाती है, बीच में नहीं पहुंचती, केन्द्र को नहीं छूती है । उसने कहा, मैं मानूंगा नहीं, मैं देखना चाहता हूं । एक साथ में पानी की एक मटकी पीना मुश्किल है, और शराब !

उस तांत्रिक गुरू ने युवक को कहा कि एक मटकी शराब पी जा। उसने कहा, एक मिनट का मुझे मौका दें, मैं अभी आया । गुरू थोड़ा हैरान हुआ कि एक मिनट का मौका उसने क्यों मांगा ? एक मिनट बाद वह आया और एक मटकी उठाकर पी गया । साधु चकित हुआ – एक सांस में । साधु के जाने पर गुरू ने उससे पूछा कि एक मिनट का समय तूने क्यों मांगा था ? उसने कहा, मैंने कभी एक दफा में पिया नहीं था तो मैं अन्दर जाकर अभ्यास करके आया एक मटकी अन्दर पीकर। मैं पी पाऊंगा कि नहीं पी पाऊंगा । कभी मैंने एकदम से ऐसा किया नहीं था, इसलिए जरा अभ्यास के लिए अन्दर गया और एक मटकी पीकर देखी। यह तो हो जायेगा।

तंत्र मैथुन के अतिक्रमण की बात है

यह जो वर्ग था तांत्रिकों का, बहुत कठिन साधना करनेवालों का वर्ग था । मैथुन हो, स्खलन नहीं । और मैथुन की यात्रा से आदमी निकलता

ही इसलिए है कि स्खलन हो । तो आप यह मत सोचना कि तन्त्र मैथुन के पक्ष में है ।

तंत्र तो मैथुन के अतिक्रमण की बात है ।

मैथुन के लिए जाता ही आदमी इसलिए है कि स्खलन हो। जो बोझ उसके चित्त पर और शरीर पर है वह फिक जाय । तन्त्र कहता है मैथुन सही, स्खलन नहीं। और अगर कोई व्यक्ति मैथुन की स्थिति में अस्खलन को उपलब्ध हो जाय तो इससे बड़ा ब्रह्मचर्य और क्या होगा? उन ब्रह्मचारियों से, जो कि स्त्री को देखने में डरते हैं, इस आदमी के ब्रह्मचर्य की बात ही और है । मगर यह मार्ग है अति संकीर्ण । इसलिए कृष्ण ने इसकी सिर्फ निगेटिव खबर देकर सूत्र छोड़ दिया है ।

कुछ लोग हैं जो मन को बिना किसी तरह, वश में किये हैं। मन को पूरी छूट दे देते हैं– पूरी छूट । मन से कहते हैं, जो तुझे करना है कर, लेकिन उस करने में, पार खड़े हो जा। मन को नहीं रोकते, लगाम नहीं पकड़ते मन की । घोड़ों को कह देते हैं, दौड़ो, जहां दौड़ना है। लेकिन दौड़ते हुए घोड़ों में, भागते हुए रथ में, गड्ढों में, खाई में, खड्डे में – ऊपर रथ पर बैठा है वह – वह अकंप बैठा रहता है। तंत्र कहता है कि लगाम सम्हाल कर आप अकंप बैठे रहे तो कुछ मजा नहीं है । छोड़ दो लगाम, घोड़ों को दौड़ने दो, रथ को खड्डों में, खाइयों में गिरने दो और तुम अकंप रथ पर बैठे रहे, तो ही असली मालकियत है। पर वह मालकियत बहुत थोड़े से लोगों का मार्ग है। भूल कर आप लगाम छोड़कर मत बैठ जाना, नहीं तो पहले गड्ढे में ही प्राणांत हो जायेगा । दूसरे संतुलन के लिए नहीं बचेंगे आप ।

इसलिए कृष्ण ने असंभव नहीं कहा। असंभव नहीं है, कृष्ण, भलीभांति जानते हैं। कृष्ण से बेहतर कोई नहीं जानता । यह असंभव नहीं हैं, बिल्कुल संभव है, लेकिन बहुत ही थोड़े से लोगों के लिए है। अत्यल्प, के बराबर उन्हें जिन्दगी के बाहर छोड़ा जा सकता है । और उनकी गिनती करनी भी नहीं है क्योंकि गिनती करने का कोई फायदा नहीं है । अपवाद को बाहर छोडा जा सकता है। कृष्ण: नियम की बात कर रहे हैं अर्जुन से। और अर्जुन उन लोगों में से नहीं है जो तंत्र के मार्ग पर जा सके । इसलिए कहा– दुष्प्राप्य है, बड़ी कठिनाई से मिलने वाला है, मिल सकता है। यह वैज्ञानिक चिंतक का लक्षण है। वैज्ञानिक चिन्तन अल्प को, कुछ शेष को, छोड़कर चलता है।

दूसरी बात कृष्ण ने कही, – सरल है उसके लिए जो मन को वश में कर ले। कठिन है उसके लिए जो मन को बिना वश में किये यात्रा करे। सरल है उसके लिए जो मन को वश में कर ले। सरल इसलिए है, मन को वश में कर लेने के बाद कि मन ही व्यवधान डालता है, वह व्यवधान डालने वाला अब आपके काबू में है। आप सरलता से उसका अतिक्रमण कर सकते हैं। बाधाएं आपके काबू में हैं। करीब-करीब ऐसा समझें कि कोई चाहे तो मकान से, सीढ़ियों से नीचे उतर सकता है कोई चाहे तो छलांग भी लगाकर मकान से नीचे उतर सकता है। छलांग लगाने में खतरा है। हाथ पैर टूट जायं, यह खतरा है। जब तक यह हाथ पैरों की ऐसी कुशलता न हो, जैसी कि होती नहीं है, हाथ पैर टूटने को सदा तैयार रहते हैं। और जब आप मकान पर से कूदते हैं और आपके हाथ पैर टूटते हैं तो न तो मकान की लंबाई तुड़वाती है हाथ पैर, न जमीन तोड़वाती है, आपके हाथ-पैर का ढंग, हाथ-पैर को तुड़वा देता है।

कभी आपने ख्याल किया होगा कि एक बैलगाड़ी में अगर आप बैठकर जा रहे हैं, साथ में एक शराबी धुत बैठा हो और आप होश में बैठे हों और गाड़ी उलट जाय तो आपको चोट लगे, धुत शराबी को न लगे। चोट न लगना कोई आसान बात है। शराबी रोज नालियों में गिरता है लेकिन न कहीं चोट है, न कहीं हड्डी टूटती, न फ्रेक्चर होता है, बात क्या है ? आप जरा गिरकर देखें। शराबी के पास कौन सी तरकीब है जिससे गिरता है और चोट नहीं खाता। तरकीब शराबी के पास नहीं है। असल में शरीर जब भी गिरने के करीब होता है तो रेसिस्टेंट हो जाता है। अकड़ जाता है, अकड़ी हुई हड्डी टूट जाती है। वह शराबी बेहोश है, वह रेसिस्ट नहीं करता है, उसको पता नहीं कि कब गाड़ी उलट गयी। जब उलट गयी तब भी वह गाड़ी में बैठे हुए हैं, तब भी वह हांक रहे हैं नाली में पड़े हुए। उनको पता नहीं गाड़ी कब उलट गयी। शरीर को मौका नहीं मिलता है कि अकड़ जाय। अकड़ न पाये तो सिर्फ जमीन चोट नहीं पहुंचा पाती। चोट पहुंचती है अकड़ी चीज पर।

इसलिए बच्चे इतने गिरते हैं और चोट नहीं खाते हैं। आप जरा बच्चे की तरह गिर कर देखें तब आपको पता चलेगा। एक दफे गिर गये फैसला हुआ। और बच्चा दिन भर गिर रहा है और उठकर फिर चल पड़ा है। बात क्या है, बच्चे के पास सीक्रेट क्या है ? सीक्रेट इतना ही है कि जब वह गिरता है तब शरीर को इस बात का कोई पक्का पता नहीं चलता है कि गिर रहे हैं, सम्हल जायं। सम्हलता

नहीं इसलिए चोट नहीं खाता। सम्हलेगा तो चोट खा जायेगा। सम्हलने में ही चोट खा जाता है। आदमी मकान से उतरता हो तो सीढ़ियां ही ठीक हैं। सम्हलता है जो आदमी, उसको सीढ़ियां ही ठीक हैं। क्योंकि सीढ़ियों पर सम्हल कर उतर सकते हैं। सम्हल कर छलांग लगायी तो खतरा है।

गैर सम्हला हुआ ही छलांग लगा सकता है। छलांग तो वह लगा सकता है जो गैर सम्हला हुआ है। जो गिरता हो मकान से जमीन की तरफ और इतना भी न अकड़े कि गिर रहा हूं। शरीर से गिर कर पता ही न चले। जो ऐसा ही गिरे मकान से जैसा छत पर खड़ा था, ठीक वैसा ही गिरे, जरा फर्क न पड़े। शराब पी जाय और वैसा ही रहे, जैसा शराब पीने के पहले था। मैथुन कर जाय और चित्त वैसा ही रहे, जैसा मैथुन करने के पहले था। क्रोध कर जाय और क्रोध के बीच वैसा ही रहे, जैसा क्रोध करने के पहले था। जरा अन्तर न पड़े। तो फिर वह जो छोटा सा संकीर्ण मार्ग है, यात्रा की जा सकती है। लेकिन वह कभी जन पथ नहीं बन सकता, वह पब्लिक हाई-वे नहीं है। वह अति संकीर्ण है। जनपथ पर जहां सबको चलना है वहां सीढ़ियां हैं।

कभी आपने ख्याल किया है, सीढ़ियों पर भी आप छलांग ही लगाते हैं, उतरते नहीं हैं। उतर तो कोई सकते नहीं। चाहे पूरे मकान की छलांग लगाये, चाहे सीढ़ी पर। सीढ़ी पर से आप उतर सकते हैं? एक सीढ़ी पर से दूसरी पर छलांग लगा सकते हैं। एक आदमी एक मंजिल से दूसरी मंजिल पर छलांग लगाता है। बड़ी सीढ़ी है, और कोई फर्क नहीं है। लेकिन छोटी सीढ़ी होने की वजह से आपको अड़चन नहीं आती, आप सम्हलकर उतर आते हैं। इतना ही फर्क पड़ता है।

मन को वश में करना सीढ़ियों वाला मार्ग है और मन को निरंकुश छोड़कर छलांग लगा जाना गैरसीढ़ियों वाला मार्ग है।

जापान में बौद्ध धर्म की दो शाखाएं हैं– एक शाखा को कहते हैं सहोरी झेन और एक शाखा का नाम है रिंझाई झेन। एक शाखा है, जो मानती है सडेन, इनलाइटनमेंट, अचानक निर्वाण की उपलब्धि। वह छलांग वाला रास्ता है। दूसरी मानती है ग्रेज्युअल इनलाइ टनमेंट – वह क्रमशः, एक एक क्रम, एक एक सीढ़ी चलने वाला मार्ग है।

मोजार्ड के पास एक आदमी गया। और उस आदमी ने मोजार्ड से पूछा कि जिस भांति तुमने सात वर्ष की उम्र में संगीत की समस्त कला उपलब्ध कर ली थी,

मैं भी किस भांति उसको उपलब्ध करूं, उसी तरह। मोजार्ड ने कहा, तुम्हारी उम्र कितनी है? उस आदमी ने कहा, मेरी उम्र तो सैंतालिस पार कर गयी है। नहीं, तुमको सात वर्ष में आना चाहिए था एक, और दूसरी बात ध्यान रखना, यह तुमसे न हो सकेगा मोजार्ड ने कहा। उसने कहा, लेकिन क्यों न हो सकेगा? तुमसे हो सका, मुझसे क्यों न हो सकेगा? मोजार्ड ने कहा, इसलिए कि मैं कभी किसी से पूछने नहीं गया जिसप्रकार तुम पूछने आये हो।

पूछने वाला तो सीढ़ियां ही चढ़ सकता है। पूछने वाला सडन नहीं हो सकता। पूछने का मतलब ही है कि सीढ़ियां पूछने गया है कि सम्हल के कैसे चढ़ जायं, उतर जायं। न पूछने वाला छलांग लगाता है। मोजार्ड ने कहा, मुझमें तुममें फर्क है। मैं किसी से पूछने नहीं गया, तुम पूछने आये हो। पूछने वाले को सीढ़ियां बतानी पड़ेंगी। जो लोग छलांग लगा सकते हैं वे बिना गुरू के यात्रा कर सकते हैं। लेकिन जिसको गुरू की जरूरत हो वह छलांग नहीं लगा सकता।

बिना गुरू के वही आदमी चल सकता है जो छलांग लगा सकता हो। क्योंकि गुरू की कोई जरूरत नहीं है। हमें न कोई मार्ग पूछना है न हम कोई सीढ़ियां पूछ रहे हैं। सीढ़ियां और मार्ग पूछने का मतलब यह है कि कुशलता से, बिना तकलीफ से, बिना अड़चन के, सरलता से, बिना किसी झंझट के, बिना किसी उपद्रव में पड़े, बिना किसी खतरे में पड़े मैं कैसे निकल जाऊं। गुरू ढूंढने का यही मतलब है। इसलिए छलांग लगाने वाले के लिए मार्ग बताने की कोई जरूरत नहीं है। जो छलांग लगाने वाला है वह लगा जाता है। यही तो झंझट होती है। कृष्णमूर्ति के पास लोग जाते हैं और पूछते हैं, हाऊ टु बी अवेयर, और कृष्णमूर्ति कहते हैं, डोन्ट आस्क दी हाऊ। मत पूछो, कैसे? कृष्णमूर्ति को पता नहीं है कि जो पूछता नहीं, कैसे वह आयेगा पूछने के लिए आपके पास। वह जो आया है, यह कैसे पूछने वाला ही है। असल में कैसे पूछने के लिए ही तो कोई आता है, नहीं तो आने की कोई जरूरत नहीं। आप जहां हैं वहीं से छलांग लगा जायं, कूद जायं। पूछने की जरूरत क्या है, किस दिशा में लगायें, कैसे लगायें। जिसने पूछा, किस दिशा में, कैसे, किस विधि से, वह आदमी सीढ़ियां उतरेगा।

मन को वश में करना सीढ़ियों वाला उपाय है।

एक एक कदम उठाया जा सकता है। धीरे धीरे अभ्यास किया जा सकता है। छलांग लगाने वाला मामला बहुत उल्टा है। कभी कभी कोई आदमी छलांग लगा पाता है।

अंगुलिमाल, रूक जा, चल मत

बुद्ध के जीवन में एक उल्लेख है । बुद्ध एक गांव से गुजरे थे । लोग कहते थे मत जाओ आगे डाकू है, वह हत्या कर रहा है लोगों की, रास्ता निर्जन हो गया है । वह अंगुलीमाल किसी को भी मार देता है, तुम मत जाओ इस रास्ते से । बुद्ध उससे कहते हैं, अगर मुझे पता नहीं होता तो शायद मैं दूसरे रास्ते से भी चला जाता । लेकिन अब जब कि मुझे पता है, इसी रास्ते से जाना होगा । लोग कहते हैं किस-लिए, बुद्ध कहते हैं इसलिए कि वह बेचारा प्रतीक्षा करता होगा । लोग मिल न रहे होंगे, उसको बड़ी तकलीफ होती होगी । कोई गर्दन तो मिलनी चाहिए गर्दन काटने वालों को ? और अपनी गर्दन का इतना भी उपयोग हो जाय कि किसी को थोड़ी शांति मिल जाय तो बुरा क्या है ।

बुद्ध आगे बढ़ जाते हैं । अंगुलीमाल देखता है, कोई आ रहा है दूर से, तो अपने पत्थर पर, अपने फरसे पर धार रखने लगता है । बहुत दिन हो गये, जंग खा गया, कोई निकलता ही नहीं रास्ते से । उसने कसम खा ली थी कि एक हजार लोगों की गर्दन काट कर उतनी अंगुलियों का हार बनाना है, इसलिए अंगुलीमाल उसका नाम पड़ गया । उसने नौ सो निन्यानबे आदमी मार दिये । एक की ही दिक्कत है उसी में वह अटका हुआ है । कोई निकलता ही नहीं, रास्ता करीब करीब बन्द हो गया है । किसी को आते देखकर अति प्रसन्न होकर वह अपने फरसे पर धार रखता है । लेकिन जैसे जैसे बुद्ध करीब आते हैं और जैसे जैसे वह साफ देख पाता है, तो थोड़ा उसे लगता है कि एक निरीह आदमी, सीधा सादा आदमी, एक शान्त आदमी, इस बिचारे को शायद पता नहीं है कि यहां अंगुलीमाल है और रास्ता निर्जन हो गया है, इसको एक चेतावनी दे देनी चाहिए । इसको एक दफा कह देना चाहिए कि तू खतरनाक रास्ते से आ रहा है ।

अंगुलीमाल के पास जब बुद्ध पहुंच जाते हैं तो वह चिल्लाता है कि हे भिक्षु, लौट जा वापस, शायद तुझे पता नहीं तू भूल से आ गया, इस मार्ग पर कोई आता नहीं, और तेरी शान्त मुद्रा को देखकर, तेरी धीमी गति को देखकर, तेरे संगीतपूर्ण चलने को देखकर मुझे लगता है कि तुझे माफ कर दूं, तू लौट जा । एक शर्त, अगर तू लौट जाय तो मैं फरसा न उठाऊं । लेकिन अगर एक कदम भी आगे बढ़ाया तो तू अपने हाथ से मरने जा रहा है, फिर मेरा कोई जिम्मा नहीं । लेकिन बुद्ध आगे बढ़े चले जाते हैं, अंगुलीमाल बहुत हैरान होता है । ठिठके भी नहीं, एक दफे उसकी बात के लिए रुक कर सोचा भी नहीं कि विचार कर लें । वह आगे ही बढ़ते चले जाते

हैं। अंगुलीमाल कहता है कि देखो, सुना, समझे कि नहीं, बहरे तो नहीं हो। बुद्ध कहते हैं, भलीभांति सुनता हूं, समझता हूं।

अंगुलीमाल कहता है, रुक जाओ, मत बढ़ो। बुद्ध कहते हैं, अंगुलीमाल, मैं बहुत पहले रुक गया, तब से मैं चल ही नहीं रहा हूं। मैं तुझसे कहता हूं अंगुलीमाल, तू रुक जा, मत चल। अंगुली माल ने कहा, बहरे तो नहीं हो, लेकिन पागल मालूम होते हो। मैं खड़ा हुआ हूं, मुझ खड़े हुए को कहते हो कि रुक जाओ। तुम चल रहे हो, चलते हुए को कहते हो कि खड़े हो!

तो बुद्ध ने कहा, मैंने जबसे जाना कि मन ही चलता है और जब मन रुक जाता है तब सब रुक जाता है। तेरा मन बहुत चल रहा है, इतनी दूर से तू मुझे देख रहा है और तेरा मन चल रहा है। फरसे पर धार रख रहा है, तेरा मन चल रहा है। अभी भी सोच रहा है, तेरा मन चल रहा है, मारूं न मारूं, यह आदमी लौट जाय, आये-तेरा मन चल रहा है। तेरे मन के चलने को मैं कहता हूं अंगुलीमाल तू रुक।

अंगुलीमाल तोड़ना सरल है, जोड़ सको तो जानू

अंगुलीमाल ने कहा, मेरी किसी की बात मानने की आदत नहीं है। तो ठीक है, तुम भी आगे बढ़ो, मैं भी फरसे पर धार रखता हूं। वह फरसे पर धार रखता है। बुद्ध आगे आ जाते हैं, बुद्ध सामने खड़े हो जाते हैं। वह अपना फरसा उठाता है। बुद्ध कहते हैं, लेकिन मरते हुए आदमी की एक बात पूरी कर सकोगे? अंगुलीमाल ने कहा, बोलो। कोई बात पूरी करने के लिए तो हजार आदमी मैंने काटे। तुम बोलो, बात पूरी करूंगा। मेरे वचन का भरोसा कर सकते हो। बुद्ध ने कहा, मैं जानता हूं। कोई दिया गया वचन ही हजार आदमी को मारने को मजबूर करता है। तो बुद्ध ने कहा, इसके पहले कि मैं मरूं, एक छोटी सी बात जानना चाहता हूं। यह सामने जो वृक्ष लगा है इसके दो चार पत्ते मुझे काट कर दे दो। उसने फरसा वृक्ष में मारा। दो चार पत्ते क्या, दो चार शाखाएं कट कर नीचे गिर गयीं। बुद्ध ने कहा, यह आधी बात तुमने पूरी कर दी, अब इनको वापस जोड़ दो। अंगुलिमाल ने कहा, तुम निश्चित पागल हो।

तोड़ना संभव था, जोड़ना संभव नही है। तो बुद्ध ने कहा, अंगुलीमाल तोड़ना तो बच्चे भी कर सकते हैं। अगर जोड़ सको तो कुछ हो, अन्यथा कुछ

भी नहीं हो । तोड़ना तो बच्चे भी कर सकते हैं। अगर जोड़ सको तो कुछ हो । हजार गर्दन भी काट ली है तो मैं कहता हूं कुछ भी नहीं हो, एक गर्दन जोड़ दो तो मैं समझूंगा कुछ हो । अंगुलीमाल ने फरसा नीचे पटक दिया । वह बुद्ध के पैरों पर गिर गया ।

और अंगुलीमाल ने एक क्षण में छलांग ले ली और बुद्ध ने कहा, अंगुलीमाल, तू आज से उपलब्ध हुआ, तू आज से संन्यासी हुआ । बुद्ध के भिक्षु पीछे खड़े थे । उन्होंने कहा कि हम वर्षों से आपके साथ हैं। हमको कभी आपने ऐसे वचन नहीं बोले कि तुम ब्राह्मण हुए, कि तुम उपलब्ध हुए, कि तुम पा गये । और अंगुलीमाल हत्यारे से, जो अभी क्षण भर पहले गर्दन काटने को तैयार था और सिर्फ पैर पर गिरा, उसे आप ऐसे वचन बोल रहे हैं ।

बुद्ध ने कहा, यह उन थोड़े से लोगों में से है जो छलांग लगा सकता है। यह छलांग लगा गया है। अंगुलीमाल को उठाकर खड़ा किया तो लोग उसका चेहरा भी न पहचान सके। वह क्रूर हत्यारा न मालूम कहां विदा हो गया था । उन आंखों में जहां आग जलती थी वहां फूल खिल गये थे । वह व्यक्ति जिसके हाथ में फरसा था कोई भरोसा न कर सकता था कि इसे हाथ में कभी फरसा रहा होगा । इस हाथ ने कभी फूल भी तोड़ होंगे, इतनी भी इस हाथ में कठोरता नहीं है । लेकिन बुद्ध के भिक्षुओं को तो ईर्ष्या होनी स्वाभाविक थी कि आज का नया आदमी एकदम सीनियर हो गया । एकदम सीनियर, सब छलांग लगा गया, सब व्यवस्था तोड़ दी ।

अंगुलीमाल बुद्ध के बगल में चलने लगा। गांव में प्रवेश किया, भिक्षु ईर्ष्या से भर गये । उन्होंने कहा, यह अंगुलीमाल हत्यारा है। बुद्ध ने कहा, थोड़ा ठहरो, उस आदमी को तुम नहीं जानते हो, वह उन थोड़े से लोगों में से है जो छलांग लगा लेते हैं। वह हत्या कर करके, हत्या से मुक्त हो गया और तुम हत्या बिना किये हत्या से मुक्त नहीं हो पाये । मैं तुमसे पूछता हूं भिक्षुओ, तुम्हारे मन में अंगुलीमाल की हत्या का ख्याल तो नहीं उठता ? एक भिक्षु जो पीछे खड़ा था, घबड़ा कर हट गया । उसने कहा, आपको कैसे पता चला ? मेरे मन में यह ख्याल आ रहा था कि इसको खत्म ही कर देना चाहिए । लेकिन यह तो मुफ्त, यह नम्बर दो का आदमी हो गया । बुद्ध के बाद ऐसा लगता है कि यही आदमी है, और अभी अभी आया । तो बुद्ध

ने कहा कि मैं तुमसे कहता हूं कि तुम हत्या छोड़कर भी नहीं छोड़ पाये यह हत्या कर करके भी मुक्त हो गया । इसके लिए मन को वश में करने की कोई प्रक्रिया नहीं है । और जब गांव में गये तो बुद्ध ने कहा, अब तुम्हें जल्दी ही प्रमाण मिल जायेगा। थोड़ी प्रतीक्षा करो, जल्दी प्रमाण मिल जायेगा ।

गांव में जब सब भिक्ष गये तो बुद्ध ने कहा, अंगुलीमाल तू भिक्षा मांगने जा । सम्राट भी डरते थे, अंगुलीमाल का नाम कोई ले ले, तो उनको उनसे भी कंपन हो जाता था । सारे गांव में खबर फैल गयी कि अंगुलीमाल भिक्षु हो गया । लोगों ने दरवाजे बन्द कर लिये, क्योंकि भरोसा क्या, वह आदमी एकदम से किसी की गर्दन दबा दे । दरवाजे बन्द हो गये, दुकाने बन्द हो गयीं, गांव बन्द हो गया, लोग अपनी छतों पर, छप्परों पर चढ़ गये । अंगुलीमाल जब भिक्षा का पात्र लेकर भिक्षा मांगने निकला तो कोई भिक्षा देने वाला नहीं था । हां, लोगों ने ऊपर से पत्थर जरूर फेंके थे, और इतने पत्थर फेंके कि अंगुलीमाल सड़क पर लहूलुहान होकर गिर पड़ा । और जब लोगों ने पत्थर फेंके तो अंगुलीमाल ने सिर्फ अपने भिक्षा पात्र में पत्थर झेलने की कोशिश की । न उसने एक दुर्वचन कहा, न उसने एक क्रोध से भरी आंख उठायीं, और जब वह लहूलुहान, पत्थरों में दबा हुआ पड़ा था, बुद्ध उसके पास गये, और उन्होंने कहा, अंगुलीमाल लोगों के इतने पत्थर खाके तेरे मन में क्या होता है ? अंगुलीमाल ने कहा, मेरे मन में यही होता है, जैसा नासमझ में कल तक था, वैसे ही नासमझ ये हैं, हे परमात्मा ! इनको क्षमा कर, और मेरे मन में कुछ भी नहीं होता था । बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा, भिक्षुओ, देखो ! यह बिना विधि के छलांग लगा गया ।

विपरित के बीच समता उपलब्ध होना कठिन है

कृष्ण इसलिए उस छोटे से हिस्से में छोड़ देते हैं। दुष्प्राप्य कहते हैं, असंभव नहीं कहते । सरल कहते हैं उसको, जिसने मन को वश में किया । क्योंकि मन को इंच इंच वश में किया जा सकता है । अगर हजार घोड़े हैं आपके मन के रथ में तो आप एक एक घोड़े को धीरे धीरे लगाम पहना सकते हैं। एक एक घोड़े को धीरे धीरे ट्रेन्ड कर सकते हैं, प्रशिक्षित कर सकते हैं और एक दिन ऐसा आ सकता है कि रथ ऐसा चलने लगे कि आप समता को उपलब्ध हो जाय ।

विपरीत के बीच समता को उपलब्ध होना कठिन है, सानुकूल के बीच समता को उपलब्ध होना आसान है ।

अनुकूल के बीच समता को उपलब्ध होना है, आसान है, प्रतिकूल के बीच समता को उपलब्ध होना अति कठिन है। इसलिए कृष्ण कहते हैं, मन को वश में करके अनुकूल स्थिति बनाकर शान्त हो जाना सरल है। अगर चारों तरफ हरियाली भरे वक्ष हों, पक्षियों के मधुर गीत हों, सुबह की ताजी हवा हो, सूरज का उगता हुआ, जागता हुआ नया रूप हो तो उसके बीच बैठकर ध्यान करना आसान है । बाजार हो, चारों तरफ उपद्रव चल रहा हो, आग लगी हो, उसके बीच बैठकर प्रतिकूल के बीच बैठकर ध्यान में उतरना कठिन है । लेकिन असंभव नहीं है । ऐसे लोग हैं, जो मकान में आग लगी हो और ध्यान में उतर सकते हैं। ऐसे लोग हैं जो बीच बाजार में बैठकर ध्यान में उतर सकते हैं।

यह कृष्ण उन लोगों में से हैं, नहीं तो कृष्ण युद्ध के मैदान में जाने को राजी न होते ! पर राजी हो जाते हैं, क्योंकि कोई अड़चन नहीं है, वहां भी चित्त वैसा ही रहेगा । युद्ध होगा, लाशें पट जायेंगी, खून की धाराएं बहेंगी चित्त वैसा ही रहेगा । इसलिए तो अर्जुन से कह पाते हैं कि अर्जुन, तू बेफिक्री से काट, कोई कटता ही नहीं। बस यह एक ख्याल छोड़ दे कि तू काटने वाला है, बस । काटने वाला कोई भी नहीं है यहां । तेरी भ्रांति भर तू छोड़ दे कि मैं किसी को मार डालूंगा । कि कोई मेरे द्वारा मार डाला जायेगा कि मेरे द्वारा किसी को दुख पहुंच जायेगा ।

दुख सदा अपने द्वारा ही पहुँचता है

कृष्ण कहते हैं, दुख सदा अपने ही द्वारा पहुंचता है । किसी और के द्वारा नहीं, तू यह ख्याल भर छोड़ दे कि तेरे द्वारा । अन्यथा तेरा यह ख्याल तुझे दुख पहुंचा जायेगा । सब अपने ही कारण से मरते हैं, निमित्त कुछ भी बन जाय । तू निमित्त से ज्यादा नहीं होगा, कर्त्ता नहीं होगा । इसलिए तू मारने काटने की फिक्र छोड़ दे। और फिर कौन कटता है, शरीर ही कटता है। जो भीतर है—अनकटा रह जाता है । उसे तो शस्त्र भी छेद नहीं पाते । उसे तो कोई काट नहीं पाता, आग जला नहीं पाती, पानी डुबा नहीं पाता ।

यह जो कृष्ण ऐसा कह सकते हैं, ऐसा जानते हैं इसलिए –इसलिए युद्ध के मैदान पर खड़े हो सके हैं। थोड़े से जो लोग हैं करोड़ों में, उनमें से एक आदमी युद्ध के मैदान पर खड़ा हो सकता है । नहीं तो अहिंसावादी भागेगा युद्ध के मैदान में । सिर्फ वही अहिंसावादी युद्ध के मैदान पर भी खड़ा होकर अहिंसक हो सकता है जिसने मन को वश में करने की विधि से पार नहीं पाया, मन को स्वच्छंद छोड़कर पाया है । जिसने मन को वश में किया है वह अहिंसावादी युद्ध से भागेगा। वह कहेगा कि कहीं कोई मेरी लगाम टूट जाय, युद्ध का उपद्रव कोई घोड़ा छूट जाय, कोई झंझट हो जाय। मेरी सारी व्यवस्था बनी बनायी कभी भी उच्छृंखल हो सकती है । इसलिए कहते हैं, सरल है । और सरल से ही आना उचित है । सरल का अर्थ ही यही है कि जो अधिकतम लोगों के लिए सुमग पड़ेगा, अनुकूल पड़ेगा, स्वभाव के साथ पड़ेगा, सहज है ।

कोई जाने न जाने कोई माने न माने, ऐसा है

लेकिन तीसरी बात और महत्वपूर्ण कृष्ण कहते हैं, यह मेरा मत है। ऐसा कहने की क्या जरूरत थी कृष्ण को कि यह मेरा मत है । कह सकते थे, यह सत्य है । सत्य और मत का थोड़ा फर्क समझ लें । 'ट्रुथ' का मतलब होता है, ऐसा है– मैं कहूं या न कहूं । कोई जाने न जाने कोई माने न माने ऐसा है । मत का अर्थ होता है, जैसा है उसके बाबत मेरा विचार । ओपीनियन अबाउट दी ट्रुथ । सत्य के सम्बन्ध में मेरा विचार । सत्य नहीं, मेरा विचार – विचार में भूल चूक हो सकती है, विचारमें कमी भी हो सकती है, विचार में अभिव्यक्ति दोष भी हो सकता है, विचार में भाषा के कारण जो कहा गया वह अन्यथा भी समझा जा सकता है । शद्व बोलते ही आपके हाथ में चला जाता है । मैंने शद्व बोला तो आपके हाथ में चला जाता है व्याख्या आप करेंगे । इसलिए बहुत ही ठीक बात कह रहें हैं। वह कहते हैं, यह मेरा मत है अर्जुन । मत का अर्थ है कि जैसे ही सत्य को शद्व दिया गया, वह मत हो जाता है । सत्य नहीं रह जाता । सत्य जब तक निःशद्व होता है तभी तक सत्य होता है । इसलिए जो लोग शद्वों में सत्य का आग्रह करते हैं उनको सत्य का कोई भी पता नहीं है । शद्वों में जो सत्य का आग्रह करता है उसे सत्य का कोई भी पता नहीं । शद्वों में ज्यादा से ज्यादा

मत की बात कही जा सकती है कि मेरा अभिप्राय है अर्जुन। फर्क है बहुत।

अगर कहें कि सत्य है यह तो मनाने का आग्रह वजनी हो जाता है। और मत है यह, मानो न मानो, स्वतन्त्रता कायम रहती है। सत्य को तो मानना ही पड़ेगा। मत को अस्वीकार भी किया जा सकता है। फिर और भी कारण है। जैसे ही सत्य को हम प्रगट करते हैं, वह मत हो जाता है। इसलिए सभी शास्त्र मत हैं, ओपीनियन का संग्रह है, कोई शास्त्र सत्य का संग्रह नहीं है, न हो सकता है।

सत्य के सम्बध में हजार मत हो सकते हैं

काश, दुनिया के सभी धर्म यह समझ पायें कि उनका जो शास्त्र है वह एक मत है। सत्य नहीं है तो झगड़ा न हो। क्योंकि सत्य के संबंध में हजार मत हो सकते हैं। हजार सत्य नहीं हो सकते। लेकिन चूंकि प्रत्येक शास्त्र दावा करता है सत्य का, इसलिए दो सत्यों में—दो सत्य कैसे मान लें कलह खड़ी हो जाती है।

मत है अर्जुन कहा, अर्जुन को कहा क्या कृष्ण का यह वक्तव्य बड़ा कीमती है कि मेरा मत है। कृष्ण जैसा आदमी कहे कि यह मेरा मत है, अद्भुत है। क्योंकि कृष्ण जैसा आदमी सहज ही कह पाता है, यह मत है। बिना फिक्र किये, बिना सोचे समझे उससे निकलता है यह सत्य है, क्योंकि वह सत्य को जानता है। यह बहुत कंसीडर्ड वक्तव्य है, बहुत सोचकर कहा गया कि यह मत है अर्जुन। इसको तुम ऐसा मत समझ लेना कि यही सत्य है। अन्यथा शब्दों पर गांठ बन जायेगी और शब्दों की व्याख्या तुम करोगे।

अगर मत है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि सत्य तुम्हें पाना पड़ेगा। इस मत से सत्य नहीं मिलेगा। मत से सिर्फ सूचना मिलती है कि मुझे सत्य मिला। अगर तुम्हे भी सत्य पाना है तो तुम्हें भी चेष्टा और श्रम और अभ्यास और साधना करनी पड़ेगी, तब तुम सत्य पाओगे। अगर मैं कहूं कि जो मैं कह रहा हूं वही सत्य है, तो आपको शब्द से ही सत्य मिल गया। साधना की और क्या जरूरत रह गयी। साधना की सुविधा बनी रहे। अर्जुन को पता रहे, सत्य अभी पाना है। जो मिला है वह मत है।

अर्थ और व्याख्याएं हमारी होती है

भगवान भी बोले तो जो मिलेगा वह मत होगा, सत्य नहीं होगा। साधना के लिए उपाय शेष रहेगा ही! फिर साथ में यह भी जरूरी है समझ लेना कि मत को विचारा जा सकता है। इसलिए जब तक जो आदमी विचार में पड़ा है, उससे मत की ही बात की जा सकती है, सत्य की बात नहीं की जा सकती है। क्योंकि वह इसपर सोचेगा। अर्जुन जो सुनेगा उसपर सोचेगा भी उसका अर्थ भी निकालेगा, व्याख्या भी करेगा। और अर्थ और व्याख्याएं? अर्थ और व्याख्याएं हमारी होती है। जब अर्जुन अर्थ निकालेगा तो वह कृष्ण का नहीं होगा, वह अर्जुन का होगा। हां, अगर अजुन इस हालत में आ जाय कि सोचना छोड़ दे, व्याख्या करना छोड़ दे, अर्थ निकालना छोड़ दे, सिर्फ सुन सके। इतना शून्य और खाली हो जाय कि अपने मन को विदा कर दे तो फिर मत सत्य की तरह प्रवेश कर सकता है। लेकिन ऐसा अति कठिन है। ऐसा अति कठिन है, इसलिए कृष्ण कहते हैं कि यह मत है।

श्री अर्जुन उवाच

अयति : श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानस :।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ।।३७।।
कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महोबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ।।३८।।
उतन्मे संशयं कृष्ण छेतुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ।।३९।।

इस पर अर्जुन बोला, हे कृष्ण! योग से चलायमान हो गया है मन जिसका, ऐसा शिथिल यत्नवाला श्रद्धायुक्त पुरुष योग की सिद्धि को अर्थात् भगवत्साक्षात्कारता को न प्राप्त होकर, किस गति को प्राप्त होता है। और हे महाबाहो, क्या वह भगवत्प्राप्ति के मार्ग में मोहित हुआ आश्रयरहित पुरुष, छिन्न-भिन्न बादल की भांति दोनों ओर से अर्थात् भगवत्प्राप्ति और सांसारिक भोगों से भ्रष्ट हुआ, नष्ट तो नहीं हो जाता है। हे कृष्ण! मेरे इस संशय को संपूर्णता से छेदन करने के लिए आप ही योग्य हैं क्योंकि,आपके सिवाय दूसरा इस संशय का छेदन करने वाला मिलना संभव नहीं है।

—सुना अर्जून ने कृष्ण की बात को, जो उठना चाहिए संशय, वही उसके मन में उठा। अर्जुन बहुत प्रीडेक्टीबल है, अर्जुन के सम्बन्ध में भविष्यवाणी

की जा सकती है कि उसके मन में क्या उठेगा। जो मनुष्य के मन में उठता है सहज वह उठा उसके मन में। उठा यह सवाल कि योग से चलायमान हो जाय जिसका चित, प्रभु मिलन से जो विचलित हो गया है, खो चुका है जो उस निधि को, यद्यपि श्रद्धायुक्त है, चाहता भी है कि पा ले, कोशीश भी करता है कि पा ले, लेकिन मन थिर नहीं होता है, तो ऐसे व्यक्ति की गति क्या होगी?"

कहीं ऐसा न हो राम और काम दोनों ही खो जायें

यह डर स्वाभाविक है। तत्काल पीछे पूछता है कि कहीं ऐसा तो न होगा कि जैसे कभी आकाश में, वायु के झोंको में बादल छितर बितर होकर नष्ट हो जाते हैं, कहीं ऐसा तो न होगा कि दोनों ही छोरों को खो गया आदमी हो जाये–यहां संसार को छोड़ने की चेष्टा करे कि परमात्मा को पाना है, और वहां मन थिर न हो पाये, और परमात्मा मिले नहीं, तो कहीं ऐसा तो न होगा कि राम और काम दोनों खो जायं और वह आदमी बादल की तरह, हवाओं के दोनों तरफ के झोंको में तितर बितर होकर नष्ट हो जाय। कहीं ऐसा तो न होगा ?

संसार से छोड़ते समय मन में यह सवाल उठता ही है कि कोई ऐसा तो न होगा कि मैं संसार की तरफ वैराग्य निर्मित कर लूं तो संसार भी छूट जाय, और परमात्मा को पा भी न सकूं, क्योंकि मन बड़ा चंचल है। तो संसार भी छिन जाय और परमात्मा भी न मिले, तो न घर का न घाट का, धोबी के गधे जैसा न हो जाऊं। अभी कहीं तो भी संसार में सही, अभी कुछ तो मेरे पास है। माना कि तामस है माना कि सपने जैसा है, फिर भी है तो। सपना ही सही, झूठ ही सही, फिर भी भरोसा तो है कि मेरे कुछ है, कोई मेरा है, पत्नी है, बेटा है, बेटी है, मित्र हैं, मकान है। माना कि झूठा है, कल मौत आयेगी, सब छीन लेगी, लेकिन मौत जब तक नहीं आयी है तब तक तो है। और माना कि कल सब राख में गिर जायेगा, लेकिन जब तक नहीं गिरा तब तक तो सान्त्वना है। कहीं ऐसा तो न होगा, हे महाबाहो कि इसे भी छोड़ दे आदमी और जिसकी तुम बात करते हो, उस राम के पाने की वासना से मोहित हो जाय, तुम्हारा आकर्षण पकड़ ले।

और तुम जैसे आदमी खरतनाक भी नहीं, उनकी बातें आकर्षण में डाल देती हैं, मोह पैदा हो जाता है कि पा लें इस ब्रह्म को, पा लें आनन्द को, मिल जाय समाधि, हो जाय निर्वाण हमारा भी, हम भी पहुंचे उस जगह जहां सब

शून्य और सब मौन है, और जहां परम सत्य का साक्षात्कार है । तुम्हारे मोह में पड़ा, तुम्हारी बात के आकर्षण में पड़ा आदमी संसार को छोड़ दे, खूंटी तोड़ ले यहां से और दूसरी खूंटी न गाड़ पाये । यह तट भी छूट जाय संसार का, उस तट की कोई खबर नहीं । नाव कमजोर है, हवा के झोके तेज हैं, कंपती है बहुत । पतवार कमजोर है, हाथ चलते नहीं और दूसरे किनारे भी नहीं पहुंच पायें, तो कहीं दोनों किनारे से भटक गयी नौका की तरह, हवा के तूफानी थपेड़ो में नाव डूब तो न जायेगी । कहीं ऐसा तो तो नहीं है कि यह भी छूटे और वह भी न मिले ।

धर्म की यात्रा पर निकल गये आदमी को यह सवाल उठता ही है । उठेगा ही, बिल्कुल स्वाभाविक है । जब हम कुछ छोड़ते हैं, तो यह सवाल होता है कि यह छूटता है, दूसरा मिलेगा या नहीं । एक सीढ़ी से पैर उठाते हैं, तो भरोसा पक्का कर लेते हैं कि दूसरी सीढ़ी पर पैर पड़ेगा या नहीं । दूसरी सीढ़ी पक्की हो जाय, तो हम उस पर पैर रख लें कि जब भरोसा कर लेते हैं पूरा पहले तब पैर उठाते हैं।

इसलिए अर्जुन कहता है, हे कृष्ण, मेरे संशय को पूरे रूप से छेद डाले, मुझे पक्का करवा दें आश्वासन कि मिल भी जायेगा दूसरा तट, ताकि मैं निःसंशय यह तट छोड़ सकूं । छेद कर दें, छेद डालें मेरे इस संदेह को, जरा भी बाकी न रहे । अगर यह जरा भी बाकी रहा तो सब छोड़ने में मुझे कठिनाई होगी । एकाध जंजीर को मैं तट से बांधे ही रहूंगा । एकाध लंगर नाव का मैं डाले ही रहूंगा । दूसरे तट पर जाने में मेरी हिम्मत कमजोर होगी । डर लगेगा ।

डर लगेगा पता नहीं दूसरा किनारा है भी या नहीं । होगा भी तो मिलेगा भी या नहीं ।

और जैसा मन मेरा है उसे मैं भलीभांति जानता हूं । और जो शर्तें तुमने कही वह भी मैंने ठीक से सुन ली कि मन बिल्कुल थिर हो जाय । और मैं भलीभांति जानता हूं कि क्षण को मन थिर होता नहीं । सब घोड़े वश में आ जायं और मैं भलीभांति जानता हूं कि एक भी घोड़ा वश में आता नहीं । और सब इंद्रियों के मैं पार चला जाऊं और भलीभांति जानता हूं कि इंद्रियों के अतिरिक्त मेरा कोई पार का अनुभव नहीं है । तो कहीं ऐसा न हो कि कल तुम कह दो कि शर्त तूने पूरी

नहीं की इसलिए किनारा नहीं मिला । लेकिन मेरा क्या होगा, यह तट भी छूट जाय, वह तट भी न मिले तो कहीं बिखर तो न जाऊंगा, टूट तो न जाऊंगा ? गति क्या होगी मेरी ? इस संशय को पूरा छेद डालो कृष्ण, पूरा ही । और कृष्ण से वह कहता है, तुम जैसा आदमी दूसरा मिलना मुश्किल है । संभव नहीं कि तुम जैसा आदमी मैं फिर पा सकूं जो मेरे इस संशय को छेद डाले । ऐसा अर्जुन ने क्यों कहा होगा ?

जो निःसंशय है, वही संशय को काट पायेगा

संशय को वही छेद सकता है जिसकी आंखों में स्वयं भी संशय न हो, जो असंदिग्धमना हो जो निःसंशय हो, जो अपने ही भीतर भरोसे से इतने भरपूर हो कि भरोसा ओव्हरफ्लो करता हो, बाहर बहता हो, जिसके रोयें रोयें से पता चलता हो कि इस आदमी के मन में कोई संशय, कोई प्रश्न नहीं है । कृष्ण जैसे आदमी प्रश्न नहीं पूछते हैं कभी । कृष्ण जैसे आदमी कभी किसी के पास शंका निवारण के लिए नहीं जाते । अर्जुन भलीभांति जानता है कि कृष्ण कभी किसी के पास शंका निवारण को नहीं गये । भलीभांति जानता है कि इनके मन में कभी प्रश्न नहीं उठा, भलीभांति जानता है कि वह बिल्कुल निःसंशय में जीते हैं । ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, कठिन है । सदियाँ बीत जाती हैं तब कभी ऐसा आदमी उपलब्ध होता है ।

जिसके मन में कोई संशय नहीं है वही तो दूसरे के संशय को काट पायेगा ।

जिसके मन में स्वयं ही बहुत तरह के संशय हैं वह दूसरे के संशय को काटने भला जाय, पर जड़ों को पानी सींच कर लौट आयेगा ।

हम सब यही करते हैं । हम सब एक दूसरे का संशय काटते हैं । बेटे का संशय बाप काटता है और बाप खुद संदिग्ध है । उसको खुद पता नहीं है कि मामला क्या है । बेटा पूछता है कि यह पृथ्वी किसने बनायी, बाप कहता है, भगवान ने । और भीतर भीतर कहता है कि बेटा अब आगे न पूछे कि भगवान किसने बनाया ? और कहीं बेटा जोर से न पूछ ले कि भगवान कहां है, देखा है ? क्योंकि बेटे आमतौर से नहीं पूछते इसलिए बाप अपने झूठ कहे चले जाते हैं । लेकिन थोड़े ही दिन में बेटा जवान होगा और जान लेगा कि बाप को भी पता नहीं है । लेकिन वह यह भी

जान लेगा कि बेटों के सामने जानने का मजा लिया जा सकता है, अपने बेटों के सामने वह भी लेगा। और ऐसे चलता है। गुरु असंदिग्ध भाव से जवाब देता मालूम पड़ता है, लेकिन भीतर संदेह खड़ा होता है।

कृष्ण जैसा आदमी अर्जुन को मिले, तो स्वाभाविक है उसका कहना कि है महाबाहो तुम जैसा आदमी फिर नहीं मिलेगा, तुम काट ही डालो। अगर तुम न काट पाये मेरे संदेह को तो फिर मैं आशा नहीं कर सकता कि कुछ हो सकता है। फिर मैं होपलेस हालत में, बिल्कुल आशारहित हो जाऊंगा। फिर मेरी कोई आशा नहीं है। क्योंकि जैसा मैं अपने को जानता हूं वैसा तो मैं इसी किनारे से बंधा रहूंगा। कम से कम कुछ तो मुट्ठी में है। और तुम जो कह रहे हो वह बात जंचती है, लेकिन मेरे संशय को काट डालो।

यहाँ दो तीन बातें ख्याल में ले लेनी जरूरी है। एक तो बात यह ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि सांसारिक मन--सांसारिक मन का यह लक्षण है कि वह किसी चीज को, छोड़ सकता है किसी चीज के पाने के भरोसे। सहज नहीं छोड़ सकता। पाने का भरोसा न हो नहीं छोड़ सकता। छोड़ सकता है किसी चीज को। त्याग करने में सांसारिक मन मुश्किल नहीं पाता, लेकिन त्याग इनवेस्टमेंट होना चाहिए। त्याग कुछ और पाने के लिए सिर्फ व्यवस्था बनना चाहिए और जब त्याग किसी और को पाने के लिए होता है तो त्याग नहीं होता, सिर्फ सौदा होता है। इसलिए सांसारिक मन त्याग को समझ नहीं पाता, सिर्फ बार्गेनिंग समझता है, सौदा समझता है। वह कहता है, ठीक है, पक्का है कि मैं यहां कुछ दान करूं तो स्वर्ग में उसका उत्तर मिल जायेगा? पक्का है कि यहां एक मंदिर बना दूं तो भगवान के मकान के पास ठहरने की जगह मिले? पक्का है? तो मैं कुछ त्याग कर सकता हूं।

सांसारिक मन, पाने का पक्का हो जाय तो छोड़ सकता है। पाने के लिए छोड़ सकता है। बड़ा अद्भुत है, यह बड़ा कंट्राडेक्टरी है, यह हो नहीं सकता। अगर पाने के लिए ही छोड़ रहे हैं तो छोड़ना नहीं हो सकता और कठिनाई यह है कि जो छोड़ता है वही पाता है। और फिर इस वक्तव्य को हमे पैराडाक्स को इस उलटबांसी को ठीक से समझ लेना चाहिए।

जिसे पाना हो उसे पाने की बात छोड देनी चाहिए

कबीर के पास लोग जाते थे तो वह उलटबांसियां कहते थे। कोई उनसे पूछता था उल्टी सीधी बातें आप कहते हैं, हमारी समझ में नहीं पड़ती हैं

तो वे कहते तुम जाओ । क्योंकि आगे की जिस यात्रा पर मुझे तुम्हें ले जाना है वह सब उलटबांसियाँ है । उलटबांसी का मतलब होता है पैराडाक्स ।

जैसे कबीर के पास कोई जायेगा और पूछेगा, परमात्मा है ? तो कबीर उसको उसका उतर न देंगे, वह कहेंगे समुंद लागी आग, नदियां जल भयीं राख । वह आदमी कहेगा, समुद्र में आग लग गयी है और नदियां राख हो गयी है ? कबीर कहेंगे, तू जा अगर राजी हो तो रुक, नहीं तो आगे फिर और उपद्रव होगा । कोई आकर पूछेगा, आत्मा क्या है ? तो कबीर कहेंगे, जाग कबीरा जाग, माछी चढ़ गयी रुख । मछली जो है वह झाड़ पर चढ़ गयी, कबीर जाग । वह आदमी कहेगा, मैं आत्मा के सम्बन्ध में समझने आया, कहां की मछलियां, कहां के रुख ? कभी मछलियां झाडों- पर चढ़ी हैं ? कबीर कहेगे कि तू जा, क्योंकि आगे की बातें और कठिन है ।

यह जो कृष्ण से अर्जुन पूछ रहा है, उसका उत्तर, उसकी दुविधा असल में यही है । दुविधा त्याग की यहीं है कि त्याग बिना पाने की आशा के किया जाय तो होता है, और जो बिना पाने की आशा से त्याग करता है वह बहुत पाता है । जो पाने की आशा से त्याग करता है, चूंकि वह पाने की आशा से करता है, इसलिए त्याग नहीं हो पाता और चूंकि त्याग नहीं हो पाता इसलिए वह कुछ भी नहीं पाता । जिसे पाना हो, उसे पाने की बात छोड़ देनी चाहिए । जिसे न पाना हो उसे पाने की बात करते चले जाना चाहिए । सांसारिक मन नहीं समझ पायेगा । वह कहेगा कि पाने की बात छोड़ दूं अच्छा छोड़ देते हैं, लेकिन पाना क्या सच में छोड़ने से हो जायेगा ? इसका जो भीतरी सांसारिक मन का बनावट है जो इनर स्ट्रक्चर है, जो मेकेविज्म हैं वह यह है ।

शांति की तलाश महा अशांति है

मेरे पास लोग आते हैं, वह कहते हैं, हम ध्यान बहुत करते हैं शांति नहीं मिलती । और मैं उनसे कहता हूं कि तुम शांति तो पीछे छोड़ दो । तुम शांति मत चाहो, फिर तुम ध्यान करो । और शांति मिल जायेगी । वह परिणाम होगा सहज । तुम मत मांगो, डोन्ट मेक इट ए डिमान्ड इट विल बी रिजल्ट । तुम मांग मत बनाओ उसे, वह परिणाम होगा वह हो जायेगा । इसकी तुम फिक्र न करो तो कहते हैं कि फिर हम शांति का ख्याल छोड़

द तो शांति मिल जायेगी ? तो शांति का ख्याल भी छोड़ने को राजी एक ही शर्त पर, शांति मिल जायेगी ? अब शांति की तलाश अशांति है इसलिए शांति की तलाश से कभी शांति नहीं पा सकते।

तलाश अशांति है और शांति की तलाश महा अशांति है। ऐसा है। दिस इज ट्रुथ दी यह ऐसा तथ्य है, ऐसा अस्तित्व है, इसमें कोई उपाय नहीं है। इस अस्तित्व की शर्तों को मानें तो ठीक, न मानें तो दुख भोगना पड़ता है। इस अस्तित्व की शर्त ही यह है। उस पार जाने की शर्त यह है कि यह किनारा छोड़ो और यह भी शर्त है कि इस किनारे की बात मत करो।

अर्जुन कहता है कि मुझे निःसंदिग्ध कर दें हे महाबाहो, तुम्हारी बाहें बड़ी विशाल हैं। तुम दूर के तट छू लेते हो, तुम असीम को भी पा लेते हो। तुम मुझे कह दो, भरोसा दिला दो । लेकिन सच ही क्या कृष्ण का भरोसा अर्जुन के लिए भरोसा बन सकता है ? क्या कृष्ण यह कह दें, हां मिलेगा दूसरा किनारा तो भी क्या संदेह करने वाला मन चुप हो जायेगा ? क्या वह मन नया संदेह न उठायेगा ? कि अगर कृष्ण के कहने से नहीं मिला तो ? फिर कृष्ण जो कहते हैं वह मान ही लिया जाय जरूरी क्या है। फिर हम कृष्ण की मानकर अगर चले भी गये और कल अगर खो गये तो किससे शिकायत करेंगे, कहीं बादल की तरह बिखर गया तो किससे कहेंगे ? और अगर गति बिगड़ गयी तो कौन होगा जिम्मेदार ? कृष्ण होगें जिम्मेवार ?

अजीब है आदमी का मन। असल बात यह है कि संदेह करने वाला मन संदेह करता ही चला जायेगा । ऐसा नहीं है कि एक संदेह का निरसन हो जाय तो निरसन हो जायेगा। एक संदेह का निरसन होते ही दूसरा संदेह खड़ा होता है, दूसरे का निरसन होते ही तीसरा संदेह खड़ा होता है । फिर कृष्ण क्यों संदेहों को तृप्त करने की कोशीश कर रहे हैं ? क्या इस आशा में कि संदेह तृप्त हो जायेंगे ? नहीं । सिर्फ इस आशा में कृष्ण अर्जुन के संदेह दूर करने की कोशीश करेंगे कि धीरे धीरे हर संदेह के निरसन के बाद जब नया संदेह खड़ा होगा तब अर्जुन जाग जायेगा और समझ पायेगा कि संदेहों का कोई अन्त नहीं है । ख्याल रखिये, संदश के निरसन से संदेह का निरसन नहीं होता लेकिन बार बार संदेह के निरसन करने से आपको यह स्मृति आ सकती है, कितने संदह निरसन हो गये, मेरा

देसंह तो वैसा का वैसा ही खड़ा हो जाता है। यह तो रावण का सिर है, काटते हैं फिर लग जाता है, काटते हैं फिर लग जाता है। काटते हैं फिर लग जाता है। कृष्ण अथक काटते चले जायेंगे पूरी गीता संदेह के फिर काटने की व्यवस्था है। एक एक संदेह को काटेंगे, जानते हैं संदेह से संदेह, किसी भी भरोसे–आश्वासन से कटता नहीं है। लेकिन अर्जुन संघ जाय कट कट कर और हर बार खड़ा होकर गिरे और फिर खड़ा हो जाय, संदेह मिटे और फिर बन जाय, जवाब आये और फिर प्रश्न बन जाय, ऐसा करते करते शायद अर्जुन को यह ख्याल आ जाय कि नहीं संदेह व्यर्थ है। और आश्वासन की बात भी बेकार है। किसी क्षण यह ख्याल आ जाय तो तट से छूट सकता है।

मगर अर्जुन की प्यास बिलकुल मानवीय है। ट्रू ह्यूमन, बहुत मानवीय है। इसलिए कृष्ण नाराज न हो जायेंगे। जानते हैं, मनुष्य जैसा है, तट से बंधा, उसकी भी अपनी कठिनाइयां हैं। किसी का सपना हम तोड़ दें, सुखद सपना कोई देखता हो। माना कि सपना था, पर सुखद था, तोड़ दें, वह आदमी पूछे कि सपना तो आपने मेरा तोड़ दिया, लेकिन अब, अब मैं कहां? अब मैं क्या देखूं। अभी जो देख रहा था सुखद था। आप कहते हैं, सपना था इसलिए तुड़वा दिया। अब मैं क्या देखूं? कुछ देखने को उसकी प्यास स्वाभाविक है। मगर उस प्यास में बुनियादी गलती है। आदमी के होने में ही बुनियादी गलती है। प्यास मानवीय है, लेकिन इस मानवीय होने में ही कुछ गलती है। वह गलती यह है कि एक सपना देखने वाला कहता है कि मैं सपना तभी तोड़ूंगा जब मुझे कोई और सुन्दर चीज देखने का विकल्प मिल जाय। और कृष्ण जैसे लोगों की चेष्टा यह है कि हम सपना भी तोड़ेंगे, विकल्प भी न देंगे ताकि तुम उसको देखो जो सबको देखता है। देखने को बन्द करो दृश्य को छोड़ो। तुम एक दृश्य की जगह दूसरा दृश्य मांगते हो। अगर कृष्ण की भाषा में मैं आपसे कहूं तो कृष्ण कहेंगे, दूसरा किनारा है ही नहीं। यह किनारा भी झूठ है और झूठ के विकल्प में, दूसरा किनारा नहीं होता है। जब यह किनारा सच होता तो दूसरा किनारा सच हो सकता था। एक किनारा झूठ और एक सच नहीं हो सकता। दोनों ही किनारे सच होंगे, या दोनों झूठ होंगे। आप समझते हैं, एक नदी का एक किनारा सच और एक झूठ होगा? या तो दोनों ही झूठ होंगे, या दोनों ही सच होंगे। अगर दोनों झूठ होंगे तो नदी भी झूठ होगी अगर दोनों सच होंगे तो नदी भी सच होगी। अब ऐसा ही समझ लें

कि तीनों ही सच होंगे या तीनों ही झूठ होंगे। दूसरा उपाय नहीं है, दूसरा उपाय नहीं है। ऐसा नहीं हो सकता कि नदी सच हो और किनारे झूठ हों, तो नदी बहेगी कैसे? और ऐसा भी नहीं हो सकता कि एक किनारा सच और दूसरा झूठा हो, नहीं तो दूसरे झूठे किनारे का सहारा न मिलेगा। तीनों सच होंगे या तीनों झूठ होंगे। अब अर्जुन कहता है, यह किनारा तो झूठ है। कृष्ण ने समझ लिया तुम्हारी बातें कैसी हैं। तुम पर मैं भरोसा करता हूं और मेरी जिन्दगी का अनुभव भी कहता है कि किनारा झूठ है। दुख ही पाया इस किनारे पर, कुछ और मिला नहीं। इस वासना में, इस मोह में, इस राग में पीड़ा ही पायी, नर्क ही निर्मित किये। मानलिया, समझ गया, लेकिन दूसरा किनारा सच है या नहीं। कृष्ण क्या कहेंगे अगर वह कह दें, दूसरा किनारा भी नहीं तो अर्जुन कहेगा, इसीको पकड़ लूं— कमसे कम जो भी है सांत्वना तो है, आशा है कि कल कुछ मिलेगा। तुम तो बिल्कुल निराश किये देते हो। बुद्ध जैसे व्यक्ति ने यही उत्तर दिया कि दूसरा किनारा भी नहीं है, मोक्ष भी नहीं है। बड़ी कठिन बात हो गयी। मोक्ष भी नहीं है और संसार छोड़ने को कहते हो। धन भी छोड़ने को कहते हो और धर्म भी नहीं तो फिर कहते किसलिए हो। इसलिए बुद्ध बिल्कुल ही सही कहे, लेकिन काम नहीं पड़ा वह सबके। दूसरा किनारा भी नहीं तो लोगों ने कहा, फिर हमें पकड़े रहने दो। दूसरा किनारा नहीं है, और इस बात पर है कि मझधार में डूबजाना ही किनारा है, लेकिन वह उलट बांसी की बात हो गयी। मझधार में डूब जाना ही किनारा है लेकिन वह उलटबांसी की बात हो गयी, वह पैराडाक्स हो गया। किनारा तो हम कहते हैं जो मझधार में कहीं नहीं होता, किनारा तो किनारे पर होता है। लेकिन यह किनारा भी छोड़ दो, वह किनारा भी छोड़ दो तो बीच में कौन रह जायेगा। दोनों किनारे जहां छूट गये, संसार भी नहीं है, मोक्ष भी नहीं है, फिर वासना की धारा को बहने का उपाय नहीं रह जायेगा। वासना की नदी फिर बह न सकेगी और कामना की नावें फिर तैर न सकेंगी और अहंकार के सेतु फिर निर्मित न हो सकेंगे। तब सब एक तरह की डूब, एक तरह का विसर्जन, एक तरह की मुक्ति, एक तरह का मोक्ष एक तरह की स्वतन्त्रता फलित होती है और वही उपलब्धि है, लेकिन अर्जुन कैसे समझे उसे। कृष्ण कोशीश करेंगे, वह अभी दूसरा किनारा है, सही है, पहुंचेगा तू, आश्वासन देता हूं मैं। इस तरह की बातें कहेंगे। यह किनारा तो छूटे कमसे कम और वह किनारा तो है नहीं और जिसका यह छूट जाता है, उसका वह छूट जाता है।

कई बार एक झूठ छुड़ाने के लिए दूसरा झूठ निर्मित करना पड़ता है, इस आशा में कि झूठ छोड़ने का अभ्यास तो हो जायेगा कमसे कम । फिर दूसरे को भी छुड़ा लेंगे । और दो तरह के शिक्षक हैं पृथ्वी पर, जो कहते हैं जो तुम्हारे हाथ में है वह झूठ है और तुम्हारे हाथ में कुछ देने को राजी नहीं । क्योंकि कुछ भी हाथ में होगा झूठ होगा । ऐसे शिक्षक सहयोगी नहीं हो पाते । दूसरे शिक्षक ज्यादा करुणावान हैं । वे कहते हैं तुम्हारे हाथ में जो झूठ है उसे छोड़ दो, हम तुम्हारे लिए सच्चा हीरा देते हैं । हालांकि कोई सच्चा हीरा नहीं है । हीरा मिलता है उस मुट्ठी को जो खुल जाती है और कुछ भी नहीं पकड़ती, अनक्लोंगिंग । खुली मुट्ठी कुछ नहीं पकड़ती, उसको हीरा मिलता है । जो कुछ भी पकड़ती है वह पत्थर ही पकड़ती है । पकड़ना हो तो पत्थर आता है पकड़ में, हीरा तो खुले हाथ की पकड़ में आता है । और खुले हाथ की पकड़ उलटबांसी होती है । "जाग कबिरा जाग माछी चढ़ गयी रूख । समुंद लागी आग, नदियां जल भहें राख ।"

पर वह कृष्ण, कबीर की भाषा कभी कभी बोलते हैं, बीच बीच में जांचने के लिए, कि शायद अर्जुन राजी हो । नहीं तो फिर, फिर वह अर्जुन की भाषा बोलने लगते हैं ।

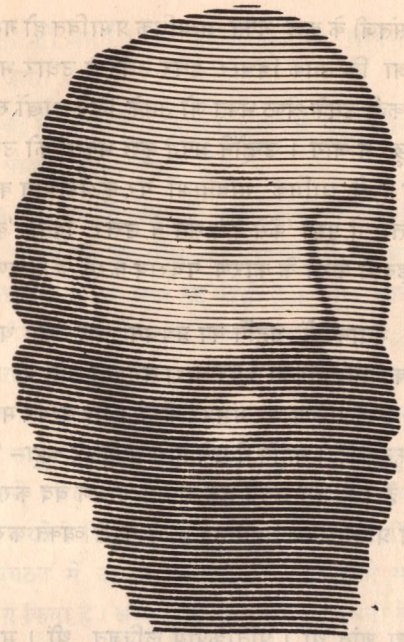

क्रांतदर्शी रजनीश

अमृत आकाश और आलोक के आनंदमयि अग्रदूत

प्रो. र. के. सोनग्रा, एम्. ए.
(आचार्य, साहित्य वाचस्पति, साहित्यरत्न)

एक संत थे। उनकी मंडली बहुत धनवान थी। इसलिये उनकी सामान्य बातें भी उनकी भक्त मंडली लिपिबद्ध कर देती थी। अपने कृष्णकृत्यों से कमाये हुए धन को वे धार्मिक कृत्यों में लगाकर अपने आपको पुण्यात्मा का प्रमाण पत्र देना चाहते थे। भक्तों की स्तुति और अपनी ऐश्वर्यपूर्ण स्थिति से संत के मनमें महत्त्वाकांक्षा जाग उठी। 'चांदी की नाव' से वे लोकप्रियता की नदी पार करना चाहते थे। उन्हें लग रहा था अब भारत वर्ष में केवल वे ही वे छाये हुए हैं।

एक दिन उसी गांव में एक तत्त्वज्ञ महर्षि का आगमन हुआ। महर्षि की वाणी विनम्र थी। विचार मौलिक थे। विनम्र वाणी विश्व में विक्रम कर देती है।

उनके विचारों से संतजी के कुछ भक्त अत्यधिक प्रभावित हो गये ! जीवन में पहली-बार उन्हें ज्ञात हुआ कि उनके विचार इधर उधर से उधार मांगी हुई झूठी खुरचन थी । उन्हें भय था कहीं उनके श्रेष्ठ भक्त जो उनके लिये लाखों रुपयों का खर्च कर रहे थे, कहीं हाथ से छूट न जाय । उन्होंने अपने कुछ भक्तों को उकसाया, और कहा,– 'महर्षि, धर्म विरोधी है, वे धार्मिक भावनाओं पर कुठाराघात करते हैं', उन्हें रोकना चाहिये । मूर्ख भक्तों ने पूछा 'कैसे ?', संत ने उत्तर दिया, 'क्या आपने नहीं सुना बहुत सी सभायें गड़बड़ी करने के कारण, पथराव करने के कारण बंद हो जाती हैं ।"

एक विस्तृत मैदान में महर्षि का प्रवचन चल रहा था । संत के भक्तों ने कुछ गड़बड़ी करने का प्रयास किया । पर सारा समुदाय शांत था । सभा चल रही थी । एक ने बहुत हिम्मत करके एक पत्थर मंचपर फेंका । वह पत्थर महर्षि के सिर को लगा और खून की धार फूट पड़ी । महर्षि ने उसे हाथ में लेकर कहा– "वैचारिक विद्रोहकी यह प्रतिक्रिया मात्र है । मैं उस समय तक अपना भाषण बंद करता हूँ । उन सज्जनों के पास ऐसी बहुतसी प्रतिक्रियायें छिपी हुई हैं, वे सारी व्यक्त कर ले, पश्चात मैं आगे कहूँगा ।"

सारा समुदाय शांत था । प्रतिक्रियायें लज्जित थीं । महर्षि ने कहा– 'सारे मानव समूह का खून एक ही है, लेकिन दीवारे बहुत-सी हैं, कुछ रुढियों की हैं, कुछ अधर्म की हैं, कुछ महत्वाकांक्षा की है, कुछ चांदी की हैं और सबसे बड़ी दीवार है अहंकार की । मुझे आनंद होगा यदि उस दीवार के सभी पत्थर मुझपर आ गिरें । जिससे आपका द्वेष, घृणा सब समाप्त हो जाय ।'

मनुष्य के मन का उबाल बाहर निकलने पर 'वह' शान्त हो जाता है । कुछ समय तक मैं प्रतीक्षा करता हूँ उन पाषाणों की जो मेरे लिये पुष्प हैं ।

सर्वत्र शांति फैल गयी ! पत्थरोंके हाथ देह के साथ मानों पाषाण प्रतिमाओं में परिवर्तित हो गये । उनका अगुआ धीरे धीरे मंचपर आ गया और महर्षिके चरण पकड़कर उसने कहा– 'ये सब हमने तथाकथित संतके कहने से किया है । उन्होंने आपके बारेमें न जाने क्या-क्या कहा- जिससे हम आवेशमें आ गये, पर आपमें हमने कुछ और ही पाया, प्रभू हमें क्षमा कर दें ।'

महर्षिने कहा, 'प्रिय आत्मन्, महत्वाकांक्षा मनुष्य को स्पर्धा और द्वेष सिखाती है ।' पर मंगलाकांक्षा मनुष्यको आनन्द प्रदान करती है । वेश परिवर्तन करनेसे

साधुताका प्रवेश नहीं हो जाता । जब महत्वाकांक्षा का आवेश छूट जाता है, तब मनुष्य निःशेष बन जाता है ।'

जब भगवान् श्री के विषयमें मैं विचार करता हूँ, यह कहानी मुझे स्मरण आती है और वे महर्षि साक्षात् दिखायी देते हैं ।

जीवन में कुछ साक्षात्कार होते हैं–अपूर्ण क्षणोंकी अलौकिक एक उपलब्धि, एक निरंतर असीम आनंद की उपलब्धि–जो शब्दोंके शिल्पमें साकार नहीं होती वह केवल आत्माभिव्यक्ति की तड़पन, मात्र रह जाती है । मनुष्य आता है भूख और प्यास लेकर . . . क्षुधा और पिपासा ने उसके प्राण विकल कर दिये, प्रकृतिके मनोहारी सौंदर्य को वह पी न सका । विराट् विश्वकी 'लय' में उसे 'आत्मलय' नहीं मिला . . . सृष्टि के सुकोमल स्वरोंमें उसके स्वर नहीं मिले . . . यह सामंजस्य–यह समग्रता–यह समाधानकी समाधि साकार हुई है– अंर्तद्रष्टा रजनीशमें, एक पुरुषोत्तम दार्शनिक में, ज्वलंत जीवन सर्जकमें । भगवान श्री किसी धर्म पंथ और संप्रदाय के प्रवर्तक नहीं हैं– जिस 'सत्य' को प्राप्त करने के लिए असत्यमें डूबना पड़े–जिसकी नींव भय पर आधारित है, ऐसे किसी भी संगठन में उनकी आस्था नहीं है । उन्होंने मनुष्यों का, तत्वोंका, दर्शनों का वास्तवदर्शन किया है । और अपने ही बनाये हुए बंधनों से उन्हे मुक्त होने का संदेश दे रहे हैं ।

अमृतमयी आत्मा

भगवान् श्री के हृदय में सभी के प्रति प्रेम भरा हुआ है । उनका दर्शन, केवल एक ही शब्द– एक ही भावना और एक ही आदेश देता है वह प्रेम है । घृणा मानवीय हृदय की विषवल्ली है–वह अहंकारसे पुष्ट होती है–प्रेम में यह द्वैत समाप्त हो जाता है–प्रेम पियूष से अमृत लता सिंचित होती है । भगवान् रजनीश की दृष्टी में समग्र संसार की करुणा झलकती है और उनकी अमृतमयी वाणी मानवीय हृदयकी स्नेहलता को आप्लावित करती है । भगवान् श्री ने सत्य के दर्शन के लिये 'साधना पथ' का प्रवास किया परंतु उससे उनके जीवन में उग्रताका नहीं मृदुता का आविर्भाव हुआ । आप जब बोलने लगते हैं सारे श्रोता गण सम्मोहित हो जाते हैं, उनकी आत्माकी एक एक पाँखुरी खिलने लगती है । टूटे हुए तार जुड जाते हैं । भूले हुए स्वर मिल जाते हैं । ऐसा लगता है इनकी वाणी हमारी आत्मा से संवाद कर रही हो । बहुत प्रतीक्षा के पश्चात् जब प्रिय मिलन होता है तब आग्रही प्रीति में समय की सम छूट जाती है । उसी प्रकार ही भगवान् श्री की अमृतवाणी वह अमृत वाहिनी सरिता जब बहने लगती है तब हमें लगता है यह मधुर अनुभव समाप्त न हो . . !

एक एक शब्द नवीन अर्थों के इंद्रधनुष्य ले आता है । उस सामान्य वाक् प्रतीक में प्राण आ जाता है– वही शब्द उनकी वाणी से अमरता प्राप्ति कर लेते हैं– जब वे कहते हैं– 'प्रेम के अतिरिक्त और दूसरा कोई संदेश हो नहीं सकता । त्याग जीवन की कसोटी नहीं, उपलब्धि है । अगर पाना है तो अपने आप को मिटाने का साहस चाहिये । मनुष्य का व्यक्तित्व खण्डित है । चित्त की स्वतंत्रता, सरलता और शून्यता मुक्ति है . . . तब श्रोताओंको अपने-अपने आत्मझंकार सुनायी देते हैं । अत्यन्त वाहक विचार जब उनकी मोहक वाणी से उच्चारित होते हैं तब वे विवेक वाहक बन जाते हैं । उनकी अमृतमयी वाक्सरिता में अँजली भरनेका सुप्रिय सौभाग्य जीवन के सार्थक क्षण बन जाता है ।

निरभ्र आकाश

मानवीय मन अनेक विचारों से, आच्छादित है । हर क्षण वहां कुछ न कुछ ठूँसा जाता है । एक विचित्र वस्तु संग्रहालय बन गये हैं हम । परंतु वहां भी 'ध्वंसावशेष' अधिक है । किसी प्रकारकी संगति नहीं है । जिस प्रकार एक ही फिल्म पर अनेक चित्र खींचनेपर–आनेवाला चित्र केवल 'जटिलता' का ही होता है उसमें वास्तविकता का ज्ञान नहीं होता है । उसी प्रकार मानवीय मन भी भूकंपग्रस्त प्रकृति की भाँति संतप्त और अस्त व्यस्त है ।

भगवान श्री उस अभिशप्त संतप्त मनको प्रशांत कर देते हैं । वे कहते हैं, आज हम कुछ न कुछ मन में ठुँस रहे हैं । पर किसीके मनमें आकाश नहीं है । प्रेमकी प्रतिमा चित्रित करना हो तो हृदयमें आकाश होना आवश्यक है। चित्तमें यह आकाश न होने के कारण हम प्रकृति से तादात्म्य नहीं कर सकते । चंद्रमाके मधुर-सुकोमल झरते हुए प्रकाश में केवल आनंदकी अनुभूति निश्चल आत्मा ही कर सकती है । पर हमें तो उस रुपहले किरणों में रौप्य मुद्राओं की वर्षा दिखायी देती है, तो कहीं शुभ्र धवलता में दुग्ध पान की स्मृति! हमारे चित्त में इसीसे एक अस्तव्यस्तता (Chaos) हो जाती है और जो हमें अमृत अनुभूति से अलग रखती है। भगवान श्री सबसे प्रथम मानवीय मनको प्रशांत जलकी भाँति निर्मल करना चाहते हैं । वहां आकाश उत्पन्न होते ही आलोक आ जाता है ।

अद्भुत आलोक

भगवान श्री कहते हैं–अंधकार कितना भी घना हो सूर्य की एक ही किरण उसे भेद सकती है । 'प्रकाश' का वर्णन नहीं होता, उसके दर्शन होते हैं ।

किसी एक अंधे व्यक्ति को लोगोंनें बहुत बतलाया की प्रकाश ऐसा होता है। परन्तु वह उसे मानने के लिए तैयार नहीं था । वह 'प्रकाश' की कल्पना नहीं कर सकता था उसे उपदेश की नहीं उपचार की आवश्यकता थी। तब उसकी आंखोंका उपचार किया गया और जाली हट गयी तब उसने अद्‌भुत आलोक के दर्शन किये और आत्मविभोर हो उठा। परमात्मा के दर्शन के विषयमें हम चमत्कार या सगुण दर्शनकी कथाएँ सुनते हैं–और सत्य में दर्शनमें भगवान श्री कभी 'समन्वय' के नामपर 'संधिपत्र' नहीं करते । मनुष्यको और उसकी सभी भावनाओंको आंतरिक दृष्टिसे देखनेकी 'क्ष' किरणे उन्हें प्राप्त है–मनुष्यके अंतर्मन में चला हुआ 'काम' का कोलाहल वे घृणित नहीं मानते -बहुत से संत, महंत और अर्हन्त, काम (Sex) के उच्चारण से ही घबराते हैं और उस कोलाहल में अपने अपने जीवन को हलाहल बना देते हैं। अपने देह से संघर्ष आरंभ कर देते है।

भगवान श्री ने कहा, यह सृजनात्मक शक्ति है इसका ऊर्ध्वीकरण होना चाहिये । यही प्रेम का उद्‌गाता है । मनुष्यको जब 'प्रेम के पंख' आ जाते हैं तब वह 'सूर्य की ओर -उस सत्य सूर्यकी ओर उडान' भरता है। सृष्टि के कण कण में प्रेम का, निर्माण का अमरत्वका अविरत परिवर्तन हो रहा है – एक नन्हें से बीज में करोडों वृक्षों को उत्पादित करनेकी क्षमता देखने की सूक्ष्मदर्शिता आपमें है, इसलिए आपने मानवीय मनमें क्रांति बीज' बोए उसे 'साधना पथ' पर चलनेका संकेत किया । धरती के मिट्टी से बना मानव यह सर्वश्रेष्ठ रचना, यह सब 'मिट्टी के दिये' जब स्नेहज्योति जलकर प्रज्वलित होंगे तब 'पथ के प्रदीप बन जायेंगे। भगवान श्री के वचन ऐसे ही 'अमृत कण' हैं उनका प्राशन' मनुष्यमें सभी के प्रति प्रेमका निर्माण करता है –मनुष्यके उसपर लादे हुए सभी कृत्रिम आवरण झर जाते हैं और अद्‌भुत आलोक में वह आनंद विभोर हो जाता है।

अमृत-आकाश-और आलोक के इस अग्रदूतने दर्शनोंमें उठाए गए निसार प्रश्नोंका प्रसार सारहीन कर दिया। अध्यात्मिकता विवाद की बात नहीं वह सृजन का सुख संवाद है। परन्तु संसार में कुछ प्रश्न अत्यंत जटिल है जिनके उत्तरों का आभास दिखाकर महत्ता प्राप्त होती है । कहीं-कहीं तो केवल ऊन प्रश्नों का ज्ञान ही मुक्ति और मोक्षका ज्ञान बन गया है। उन अनुत्तरित प्रश्नोंसे और अधिक प्रश्न का निर्माण कर अलग अलग वादों, संप्रदायों और तथाकथित धर्मोंका

निर्माण हुआ । विषमता, विरोध और विकास ग्रस्त मानव समाज अपने ही बनाये हुए जालमें उलझ गया ! अपने आपको 'अनावृत्त' कर देखना, अपनी वृत्तियों और प्रवृत्तियों को जाननेकी अपेक्षा वह उनपर अलग-अलग तत्वोंकी, दर्शनोंकी मिट्टी डालने लगा, अपने अबोध-आलोकमयी-दर्पण के चित्रोंको उसने मटमैले बना दिये, कहीं-कहीं तो और भी भयावह हो गये । इस भय से बचनेके लिए वह धर्म की शरण आया पर वह धर्म भी भय, भोग और भ्रष्टाचारका भ्रमित भूल-भुलैय्या निकला । जिसमें वह और भी उलझ गया । हर बीते युग की यही कहानी है । परमात्मा की प्राप्तिके लिए आत्माका हनन; काल्पनिक स्वर्ग की प्राप्ति के लिए सुख का दहन और तथाकथित मुक्ति के लिए मानवताका हनन !

संत–सत्यान्वेषी वज्ञानिक और साहित्यकारोंने मानवीय जीवनकी मौलिकताके दर्शन किये परंतु अबतक सार्वत्रिक सत्यदर्शन और सहृदयताका अभाव मिटानेकी क्षमता उन्हें प्राप्त ही नहीं हुई ।..

संसार में महापुरुषोंने सत्य दर्शन किए परंतु उनके अनुयायियोंने केवल शद्ब के दर्शन किए और केवल अनुकरण से, अनुसरण से अपने आपको बंधन में डाल दिया। मनुष्य का मुक्त होना उस के चित्त से आरंभ होता है। आजतक महापुरुषोंके अतिवादी प्रयास भूचालपर बनाये घरोंकी भाँति थे और वे बार-बार गिर रहे हैं। इसलिए आजतक इतने अधिक महान् पुरुषों का आविर्भाव होकर भी 'मानवता' में हीनता का प्रसार अधिक हुआ । सभी प्रकारके शोषणने करुणा को करुणास्पद बना दिया। भगवान श्री ने इस शोचनीय स्थिति की समाप्ति के लिए 'सिंहनाद' किया । सर्वस्व का समर्पण ही सर्वस्वकी प्राप्ति है। भगवान श्री की प्रतिमा में भगवान बुद्ध का प्रबुद्धत्व, महावीरकी सरलता, जीससकी करुणा साकार बनती है । महान् दार्शनिक सुकरात के पश्चात् संसारने सत्यज्ञानी रजनीश को प्राप्त किया है। पर सुकरात को विषपान कराने वाले हाथ हर युग में उगते हैं। पर हाँ, अब वे निष्प्राण हैं। भगवान् श्री मानवीय जीवन में अद्भुत क्रांति करना चाहते हैं। उनका दर्शन आल्हादकारी है । उनकी वाणीका श्रवण जीवन के कृतार्थ क्षण हैं। उनका सहवास आलोक का सुवास है। तेजस्वी व्यक्तित्व के इस तपस्वी महामानवको अनेक युग प्रणाम कर रहे हैं ।

(दि. १३–९–७२ को कामर्स कालेज, भिवंडी, स्टाफ अकादमी के समक्ष, प्राचार्य ग. कृ. गद्रे की अध्यक्षता में 'क्रांदतर्शी रजनीश' पर दिया गया भाषण)

आज मैं प्रियतम पायो री

आज मैं प्रियतम पायो री ।
युग युग से जिसे खोज रही थी,
हृदय समायो री ———————— आज
कण कण उसकी छवि बसी है,
हृदय न प्रेम समाए ।
अंधियारा अब भया उजाला,
उर में दीप जलायो री .....(१)
हुई ससीम से आज असीम मैं,
नवजीवन आयो री,
खोई गई सुब सुध बुध जग की
आनन्द छायो री .....(२)

—oo—

मोहे प्रिय मिलन का चाव

मोहे प्रिय मिलन का चाव,
प्यासा जन्म-जन्म का हृदय,
मिटा न मन का ताप,
अखियाँ थी ज्योति की प्यासी,
अंधियारे दिन रात,
प्रेम बिन्दू बरसा के प्रिय ने,
हर लिया सब संताप .....(१)
ज्योति से ज्योति ऐसी जगाई,
ज्योतिर्मयी भयी मैं आज,
ऐसा धनी आली प्रियतम मेरा,
आनंद मंगल आओ आज .....(२)

– मा समाधि दर्शन

कुछ स्फुट विचार

ज्ञान सीखने से नहीं आता है और जो सीखने से आता है वह ज्ञान नहीं है । ज्ञान बुद्धि की उपलब्धि नहीं है । बुद्धि स्मृति है और स्मृतिसे नहीं, स्मृति के हट जाने से ज्ञान आता है ।

—भगवान श्री

आध्यात्मिक जीवन, स्वास्थ्य-विरोध नहीं है । वह तो परिपूर्ण स्वास्थ्य है । वह तो एक लययुक्त, संगीतपूर्ण सौंदर्य की स्थिति का ही पर्यायवाची है।

शरीर-दमन अध्यात्म नहीं है, वह तो केवल भोगवादी वृत्तियों का शीर्षासन है । वह तो भोग की प्रतिक्रिया मात्र है । उसमें ज्ञान नहीं, अज्ञान और आत्म-हिंसा है । वह वृत्ति हिंसक है । उसमें कोई कहीं नहीं पहुँचता है । शरीरका दमन नहीं करना है । वह तो बेचारा केवल उपकरण है और अनुगामी है । वह तो मैं जैसा हूँ, वैसा ही हो जाता है । मैं वासना में हूं तो वह वहाँ साथ देता है । मैं साधना में हो जाऊँ तो वह वहाँ साथी हो जाता है । वह मेरे पीछे है, परिवर्तन उसमे नहीं वह जिसके पीछे है, उसमें करना है ।

—— भगवान श्री

मोक्ष प्रत्येक को मिल सकता है, जैसे कि प्रत्येक बीज पौधा हो सकता है । यह बहुत ही सरल है । बीज मिटने को राजी हो जाये, तो अंकुर उसी क्षण आ जाता है । मैं मिटने को राजी हो जाऊँ तो तो मुक्ति उसी क्षण आ जाती है ।

—भगवान श्री

सब नया है पर मनुष्य पुराना पड़ जाता है। मनुष्य नये में जीता ही नहीं, इसलिए पुराना पड़ जाता है। मनुष्य जीता है – स्मृतियें, अतीत में मृतमें। यह जीना ही है, जीवन नहीं है। यह अर्ध-मृत्यु है और इस अर्ध-मृत्यु को ही हम जीवन मानकर समाप्त हो जाते हैं। जीवन न अतीत में है, न भविष्य में है । जीवन तो नित्य वर्तमान में है ।

ज्ञात को जाने दो ताकि अज्ञात प्रकट हो सके । मृत को जाने दो, ताकि जीवित प्रकट हो सके । -- भगवान श्री

चेतना की एक स्थिति में दुःख होता है । वह उस स्थिति का स्वरूप है । उस स्थिति के भीतर दुःख से छुटकारा नहीं है। कारण वह स्थिति ही दुःख है। -- भगवान श्री

क्या मनुष्य में, क्या प्रत्येक प्राणी में, ऐसे बीज नहीं छिपे हैं, जो प्रकाश पाना चाहते हैं? क्या वहाँ भी जन्म-जन्मों से अवसर की प्रतीक्षा और प्रार्थना नहीं है ? प्रत्येक के भीतर छिपे हैं ये बीज और इन बीजों से ही पूर्ण होने की प्यास उठती है । प्रत्येक के भीतर छिपी हैं ये लपटें और ये लपटें सूरज को पाना चाहती हैं। इन बीजों को पौधों में बदले बिना कोई तृप्त नहीं होता है। पूर्ण होना ही होता है, क्योंकि मूलतः प्रत्येक बीज पूर्ण ही है ।

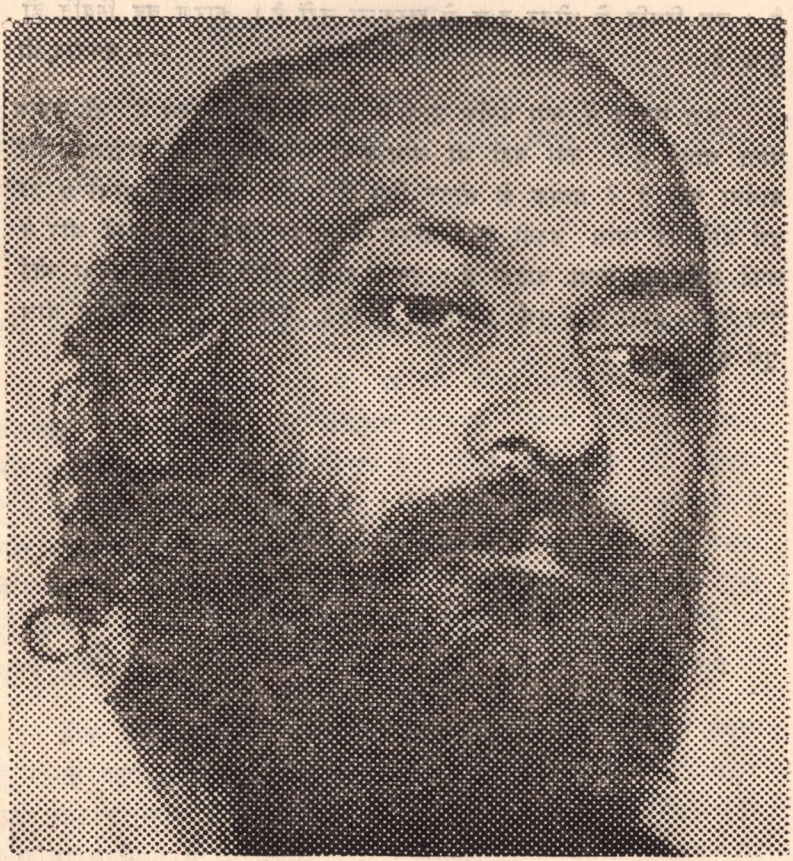

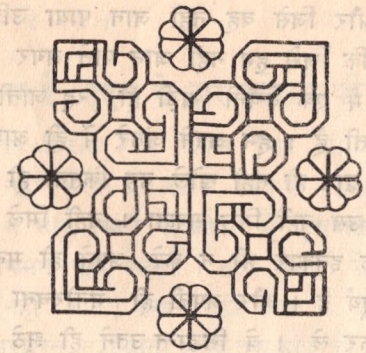

सर्वसार उपनिषद्

[माथेरान ध्यान-शिविर में 'सर्वसार उपनिषद्'
पर भगवान श्री की प्रवचन-माला का दूसरा पुष्प]

संकलन : साधु आनंद अरविंद

प्रार्थना रहित जिज्ञासा केवल बौद्धिक खिलवाड़

परमात्मा से प्रार्थना के बाद जिज्ञासा का प्रारम्भ होता है। प्रार्थना के बाद ही जिज्ञासा हो सकती है । प्रार्थना हृदय को उस स्थिति में ला देती है उस ग्राहक और संवेदनशील मनोदशा को पैदा कर देती है, जहां जिज्ञासा मात्र कुतूहल नहीं रह जाती, मुमुक्षा बन जाती है। **प्रार्थना से रहित जो जिज्ञासा है वह केवल बौद्धिक खिलवाड़ है** । और जिसने प्रार्थना नहीं की और पूछा है, उसने पूछा ही नहीं है । जिसके घर का द्वार बन्द है, अंधेरे में बैठकर जो पूछ रहा है सूर्य क्या है ? प्रकाश क्या है ? वह पूछता उत्तर उसे नहीं मिल पायेगा । और आदमी के मन का बड़े से बड़ा खेल यह है कि जब उत्तर नहीं मिलता तो आदमी खुद अपने उत्तर बना लेता है ।

अंधेरे में ही, बिना सूर्य को जाने ही कहने लगता है कि सूर्य नहीं है । इसलिए नहीं कि उसने जान लिया कि सूर्य नहीं है, इसीलिए कि वह

नहीं जान पाया । और जिसे वह नहीं जान पाया उचित है कि वह उनसे इन्कार कर दे । क्योंकि जिसे हम नहीं जान पाते अगर हम उनसे इन्कार न कर पायें तो मन में एक बेचैनी खड़ी ही रह जाती है। इन्कार करते से बेचैनी भी खो जाती है । हम अपने अंधरे में ही आश्वस्त हो जाते हैं। लेकिन जिसने घर के द्वार ही नहीं खोले वह कितना ही पूछे सूर्य क्या है, प्रकाश क्या है, उत्तर उसे नहीं मिल सकता । नहीं मिले उत्तर तो वह यह भी कर सकता है कि इन्कार भी न करे, अपने ही मन का सूर्य गढ़ ले। और कहने लगे कि सूर्य है । और अपनी ही मनोरचना कर ले । अपने ही ही सिद्धान्त निर्मित कर ले । वे सिद्धान्त उतने ही झूठे हैं जितना इन्कार करना झूठा है ।

अज्ञान में ही विवाद है

अंधेरे में खड़ा नास्तिक भी उतना ही झूठ है जितना अंधेरे में खड़ा आस्तिक झूठा है । नहीं जिसने जाना उसका यह कहना भी व्यर्थ है कि ईश्वर नहीं है । उसका यह कहना भी व्यर्थ है कि ईश्वर है । ये दोनों बाते व्यर्थ हैं। और बड़ा मजा है कि अंधेरे में बडी कलह और बड़ा विवाद चलता है उनके बीच, जिन दोनों को ही पता नहीं है। **अज्ञान बहुत विवादग्रस्त है।** अज्ञान जानता नहीं लेकिन मुखर बहुत है । विवाद तो किया ही जा सकता है। मतवाद तो खड़े ही किये जा सकते है । वस्तुतः अंधरे में ही मतवाद खड़े होते हैं।

प्रकाश में कोई वाद नहीं है । प्रकाश काफी है वाद की कोई जरूरत नहीं । सब सिद्धान्त अंधेरे में निर्मित होते हैं। प्रकाश में सिद्धान्तों की कोई भी जरूरत नहीं । **जहां सत्य प्रकट है वहां शद्ध खो जाते हैं ।** और जहां सत्य ही समक्ष है वहां सिद्धान्त को बनाने का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता है । सिद्धान्त सब्स्टीटयूट (Substitute) है, परिपूरक है । सत्य का पता नहीं है तो सिद्धान्त बनाकर हम सत्य की जगह उसे खड़ा कर लेते हैं। **ठीक जिज्ञासा प्रार्थना से शुरू होती है** । जब मैं ऐसा कहता हूं उसका अर्थ यह है कि जो सूर्य को जानने चला है कम से कम एक शर्त पूरी कर दे कि अपने मकान के द्वार खोल दे । सूर्य को जानने की आकांक्षा जगी है तो कम से कम अपने द्वार दरवाजे तो खोल लें। ताकि सूर्य उत्तर

देना चाहें तो उत्तर दे सके ।

प्रार्थना है, हृदय के द्वार खोलने की विधि

सूर्य की शक्ति विराट है । लेकिन फिर भी आप का द्वार तोड़ कर भीतर प्रवेश नहीं करेगी । आपके दरवाजे पर थपकी भी सूरज नहीं देगा । **इस जगत में सत्य किसी के जीवन में 'ट्रेसपास' नहीं करता । किसी के जीवन का अतिक्रमण नहीं करता** । सत्य किसी के जीवन में किसी भी भांति की गुलामी नहीं लाता, बन्धन नहीं लाता । इसलिए **सत्य मुक्ति है** सत्य जबरदस्ती आरोपित नहीं होता । जब तक आप ही तैयार हों सत्य आपके द्वार पर खड़ा रहेगा लेकिन थपकी भी नहीं देगा । द्वार को खटखटायेगा भी नहीं । **आपकी तैयारी आपका हृदय से दिया गया निमंत्रण ही उसका आगमन बन सकता है** ।

लेकिन आपके निमंत्रण का क्या अर्थ है ? जब तक आपका द्वारा खुला न हो, जिस अतिथि को आप पुकारते हैं, उसके लिए द्वार पर बैठ कर प्रतीक्षा भी तो करनी चाहिए । इसलिए प्रार्थना से प्रारम्भ है प्रार्थना है हृदय के द्वार खोलन की विधि । अगर प्रार्थना से रहित जिज्ञासा है तो वह जिज्ञासा खोज की कम, संदेह की ज्यादा होती है । वह इसलिए नहीं होती कि हम खोजने निकलते हैं । वह इस लिए होती है कि हम संदेह करने निकले हैं । और जो संदेह करने ही निकला है उसका संदेह रुग्ण हो जाता है। बीमार हो जाता है।

लेकिन जो प्रार्थनापूर्ण हृदय से खोलता है द्वार, ऐसा नहीं कि उनको संदेह करने का हक नहीं रह जाता । सच तो यह है कि उसे ही संदेह करने का हक मिलता है। क्योंकि अब संदेह, केवल समाधान की आकांक्षा का हिस्सा है। **अब संदेह विनाशक नहीं है। सृजनात्मक है**। अब संदेह इसीलिए है कि मार्ग के सब कंटक कैसे दूर हो जाए । प्रश्न इसी लिए है कि उत्तर कैसे निकट आ जाए । अब प्रश्न किसी बीमार चित्त की भागदौड़ का नहीं है। अब संदेह किसी रुग्ण चित्त का रोग नहीं है, एक स्वस्थ व्यक्ति की खोज है । श्रद्धापूर्ण संदेह है । शब्द बहुत उलटा दिखाई पड़ेगा । लेकिन हम एक तरफ से समझें तो ख्याल में आ जायेगा । संदहपूर्ण श्रद्धा से समझें तो ख्याल में आ जाएगा । हम श्रद्धा भी करते हैं तो वह संदेहपूर्ण होती है । हम किसी पर श्रद्धा भी करते हैं तो वह

संदेह पूर्ण होती है। उसमें संदह होता ही है। असल में हम श्रद्धा ही इसलिए करते हैं कि भीतर संदेह होता है। उसे दबाने के लिए श्रद्धा करते हैं। **भीतर संदेह हो और ऊपर श्रद्धा हो तो ऊपर श्रद्धा कमजोर होती है।** क्योंकि जो भीतर है वही शक्तिशाली है। जो ऊपर है वह कमजोर होगा। जो परिधि पर है वह कमजोर होगा जो केन्द्र में है हृदय के भीतर वही शक्तिशाली है। तो भीतर तो संदेह होता है।

श्रद्धा ऊपर से थोप लेते हैं वस्त्रों की भांति जैसे वस्त्र आपकी नग्नता को नहीं मिटाते, केवल छिपाते हैं। ऐसे ही **थोपी गई श्रद्धा भी संदेह को मिटाती नहीं सिर्फ छिपाती है।** इससे उलटा भी होता है जिसको मैं कह रहा हूं श्रद्धापूर्ण संदेह। श्रद्धा तो होती है हृदय के केन्द्र पर। परिधि पर संदेह होता है। वह संदह श्रद्धा को और प्रगाढ़ करने की यात्रा का हिस्सा है। क्योंकि **जिसने संदेह ही नहीं किया वह श्रद्धा कैसे कर सकेगा।** लेकिन है वह अति श्रद्धापूर्ण। बुद्ध से मौलंकपुत्त ने कहा है--उनके एक शिष्य ने– पूछता हूं आपसे, इसलिए नहीं कि आप पर संदह है। इसलिए कि अपने पर संदेह है। पूछता हूँ आपसे इसलिए नहीं कि जो आप कहते हैं इस पर संदेह है। बल्कि इसलिए कि आप जो कहते हैं उसे मैं समझ पाता हूं इस पर संदेह है। पूछता हूं आपसे इसलिए नहीं कि आप जहाँ पहुंच गए हैं उस पर मुझे संदेह है। पूछता हूँ सिर्फ इसीलिए कि इतनी दूर की यात्रा, इतना विराट स्वप्न, मुझे अपने पैरों पर संदह है। पूछता हूं इसलिए कि मेरा भरोसा बढ़े। पूछता हूं इसीलिए कि मेरी श्रद्धा प्रगाढ़ हो।

प्रार्थना से जब भी कोई पूछता है तो उसके हृदय के द्वार खुले होते हैं। संदेह लेकर वह नहीं आता। सिर्फ प्रश्न लेकर आता है। प्रश्नों के उत्तर हो सकते हैं संदेहों के उत्तर नहीं हो सकते। क्योंकि जिसे संदेह ही करना है वह आपके हर उत्तर पर संदेह किये चला जाता है। संदेह जो है वह इनफाइनाइट रिग्रेस (Infinite Regress) है। आप एक उत्तर देते हैं उस पर उसे संदेह है। आप दूसरा देते हैं उस पर संदेह है। संदेह उसकी भूमिका है। तो आप जो भी कहते हैं उस पर उसे संदेह है। तब तो कोई उपाय नहीं। लेकिन संदेह अगर केवल खोज का हिस्सा है। जस्ट ए मैथेडोलौजी–एक विधि–अंत नहीं, लक्ष्य नहीं, साध्य नहीं। संदेह अगर भूमिका नहीं है, जिज्ञासा है, तो संदेह बड़ा सहयोगी है। **तो श्रद्धापूर्ण संदेह है। प्रार्थना पूर्ण जिज्ञासा है।**

क्या है बंधन ?

पहला ही प्रश्न पूछा गया है 'सर्वसार' में। बंधन क्या ? ख्याल करें। हम भी पूछते हैं तो पूछतें है ईश्वर क्या ? ईश्वर है या नहीं । मोक्ष क्या ? मुक्ति है या नहीं । आत्मा क्या ? आत्मा है या नहीं। हम वहां से शुरू करते हैं जहां अंत होना चाहिए। बीमार आदमी पूछता है स्वास्थ्य क्या है ? लेकिन **समझदार सदा पूछेगा अगर बीमार हो तो बीमारी क्या है ?** निदान तो बीमारी से शुरू होगा। इसलिए सर्वसार पहला प्रश्न उठाता है बंधन क्या ? वही है रोग । वही है बीमारी। बंधे हैं हम। कारागृह में पड़ा है कोई । जंजीरों से कसा बेड़ियों में बंधा । वह पूछता है स्वतंत्रता क्या है ? उसने कभी स्वतंत्रता जानी नहीं। समझें कि सदा से बंधा है। जन्म से ही बंधा है। जबसे उसने जाना है अपने को तब से बंधा है। उसका जानना और बंधना दोनों साथ साथ जुड़े हैं। पूछता है स्वतंत्रता क्या ? समझ में शायद उसे न आ पाए। ठीक सवाल उसने उठाया नहीं। जो वह समझ सकता है अभी उसे वही पूछना चाहिए।

बुद्धिमान खोजी वह है जो उस सवाल को पूछता है जिसके जवाब को वह अभी समझ सकेगा। और शायद उसे समझ ले तो दूसरी बात भी समझ में आ जाए। इसलिए पहला सवाल है बंधन क्या ? कहां मैं बंधा हूं। क्योंकि जो आदमी सदा से बंधा है उसे यह भी पता नहीं होता कि बंधन क्या है। **बंधन को पहचानने के लिए भी स्वतंत्र होने का कोई अनुभव चाहिए।** आपके हाथों में जंजीरें डाल दी जायें ,आप पहचान जाएंगे कि जंजीरें डाल दी गईं। लेकिन अगर एक बच्चा पैदाइश के साथ जंजीरों को लेकर पैदा हो तो क्या कभी पहचान पायेगा कि यह जंजीरें हैं ? वह उसके शरीर का हिस्सा होगा। और अगर आप उसकी जंजीरें तोड़गे तो वह चीखेगा, चिल्लाएगा कि मुझे मिटाना चाहते हो ? ये जंजीरें उसका प्राण है। यें जंजीरें अलग नहीं हैं। ये जंजीरें उसका होना है।

हम ऐसे ही हैं । जब से हम हैं, जब से हमने जाना है कि हम हैं हमारे होने का बोध और हमारा कारागृह एक साथ है। हमें स्वतंत्रता का कोई अनुभव ही नहीं । हमने कभी आकाश में उडकर देखा ही नहीं । हमारे पंख कभी खुले आकाश में खुले नहीं । हमने उन्हें सदा बंद ही जाना है ।

हमारे पंख उड़ने के काम में भी आ सकते हैं इसका हमें कोई पता नहीं । हम कारागृह में ही पैदा हुए और बड़े हुए। कारागृह ही हमारा जीवन है ।

तो जो सम्यक् जिज्ञासा है वह ऐसे शुरू होगी कि बन्धन क्या है ? अभी तो हमें यह भी पता हीं कि गुलामी क्या है ? इतने गहरे हैं हम गुलामी में–गुलामी ही हैं हम। कैसे पहचाने कि गुलामी क्या है। एक व्यक्ति पैदा हुआ है और उसके सिर में दर्द रहा है जीवन भर । तो सिर दर्द और सिर में वह फर्क नहीं कर सकता । उसने सिर को सदा दर्द के साथ ही जाना है । पश्चिम की एक बहुत विचारशील महिला सीमान वेल ने लिखा है कि तीस साल की उम्र तक उसे पता ही हीं था कि सिर दर्द क्या है? इसलिए नहीं कि उसे कभी सिर दर्द नहीं हुआ था। इसलिए कि उसे सदा ही सिरदर्द रहा। उसने कभी जाना ही नहीं कि सिर भी बिना दर्द के होता है। ...तो दर्द और सिर में कोई फर्क नहीं हो सका । तीस साल की उम्र में जब पहली दफे उसका सिर दर्द ठीक हुआ तब उसे पता चला कि वह सिर दर्द था, सिर नहीं था।

जिसके साथ हम बड़े होते हैं उसे हम अलग नहीं जान पाते । इसलिए तो हम शरीर को भी अलग नहीं जान पाते । क्योंकि हम उसी के साथ बड़े होते हैं। इसलिए तादात्म्य हो जाता है । आइडेन्टिटी हो जाती है । उसी के साथ एक हो जाते । इसलिए मन के साथ अपने को पृथक हीं जान पाते क्योंकि हम उसी के साथ बड़े होते हैं। तादात्म्य हो जाता है । ऋषि पहला सवाल इस उपनिषद में उठा रहा है वह यह है की बंधन क्या है ? ऐसा समझें कि ऋषि से पूछा जा रहा है, शिष्य पूछ रहा है कि बंधन क्या है? **यह उपनिषद बहुत गहरा डायलाग है, एक संवाद है।** बंधन समझ में आ जाए तो ही जो सदा से बंधा है उसे स्वतंत्रता के संबंध में कोई दर्शन, कोई स्वप्न, कोई आकार पैदा हो सकता है ।

जो आदमी सदा बीमार रहा है उसकी स्वास्थ्य की परिभाषा नकारात्मक ही हो सकती है। वह यही समझ सकता है कि स्वास्थ्य का अर्थ होगा जहां यह बीमारी नहीं है । जो आदमी कारागृह में रहा है, जंजीरों में रहा है वह स्वतंत्रता की कोई पाजिटिव-विधायक परिभाषा नहीं समझ सकता । वह इतना ही समझ सकता है कि स्वतंत्रता का अर्थ है जहां यह जंजीरें नहीं होंगी । जहां यह कारागृह की दीवालें नहीं होंगी । जहां मुझे रोकनेवाला

द्वारपर संगीन लिये कोई पहरेदार नहीं होगा। मैं जहां जाना चाहूं, जो करना चाहूं कर सकूंगा । यह नकारात्मक परिभाषा ही उससे समझ में आ सकती है । लेकिन इस परिभाषा के पहले जेलों की दीवाल को, कारागृह के द्वार पर खड़े संतरी की व्यवस्था को, हाथ में पड़ी जंजीरों को ठीक से समझ लेना जरूरी है ।

कोकेकस का एक बहुत अद्भुत फकीर गुरजिएफ कहा करता था कि मैंने सुना है एक जादूगर के संबंध में—उसने बहुत सी भेडें पाल रखी थीं। रोज एक भेड़ को वह काटता और अपना भोजन तैयार करवाता। सैंकड़ों भेड़ें यह देखती रहती। लेकिन फिर भी भेड़ों को याद न आती यह बात कि आज नहीं कल हम भी काटे जाने को हैं। उस जादूगर के पास एक मेहमान ठहरा हुआ था । उस मेहमान ने कहा कि यह भेड़ें बड़ी अद्भत मालम होती है । इनके सामने ही तुम रोज भेड़ों को काटते रहते हो फिर भी यह भेड़ें मस्त घूमती रहती हैं। इनको ख्याल नहीं आता कि हम भी कल काटे जाने को हैं, किसी भी दिन यह छुरी हमारी गरदन पर भी पड़ेगी । उस जादूगर ने कहा मैंने इन भेड़ों को बेहोश करके, सभी को सुझाव दे रखा है। और वह यह कि प्रत्येक के कान में उसकी बेहोशी में कह दिया है कि तुम भेड़ नहीं हो! बाकी सब भेड़ हैं। **तुम भेड़ नहीं हो बाकी सब भेड़ हैं ।** सब कटेंगी तुम भर नहीं कटोगी । इसलिए ये निश्चिन्त हैं। और यह किसी को कटते देखकर भागतीं नहीं । उस मेहमान ने पूछा और भी हैरानी की बात है कि तुम इन्हें कभी बांधते नहीं। यह कभी भटक नहीं जाती । खो नहीं जाती । उसने कहा मैंने इन्हें यह भी कह रखा है कि तुम परम स्वतंत्र हो । तुम बंधी हुई नहीं हो । क्योंकि बन्धन से तो कोई भागता है। जब कोई स्वतंत्र हो तो भागने का कोई सवाल ही नहीं । बंधन हो तो भागने का ख्याल भी पैदा होता है कि भाग जाओ । लेकिन बंधन हो ही न, परम स्वतंत्र हो तो भागने की जरूरत ही नहीं।

जंजीरें जब आभूषण बन जातीं हैं

गुरजिएफ कहा करता था कि आदमी करीब-करीब ऐसी स्थिति में है। वह अपने कारागृह को अपना महल मानता है, तो उससे छूटने का सवाल ही नहीं है । बल्कि कोई छुड़ाने आ जाए तो वह सुरक्षा का इंतजाम करेगा ।

तुम हमारे दुश्मन हो, महल से छुड़वाना चाहते हो । **आदमी अपनी जंजीरों को आभूषण मानता है ।** वह उसका श्रृंगार है । तो अगर उसके आभूषण छीनने जाओगे तो तलवार निकाल कर खड़ा हो जायेगा । तो हम जीसस को ऐसे थोडे ही शूली पर लटका देते हैं ? और सुकरात को हम ऐसे ही बेकार में थोड़े ही जहर पिला देते हैं। इसलिए कि हमारा आभूषण छीनने की कोशिश करते हैं। ये हमारे दुश्मन हैं। **जिसे वे हमारी जंजीरें कहते हैं वे हमारे श्रृंगार हैं।**

जिसे वे कहते हैं तुम्हारा कारागृह वह हमारा राजभवन है। और जिसे वे कहते हैं तुम्हारी गुलामी वह हमारा जीवन है। जिसे वे कहते है दुख, उनमें ही हमारा सारा सुख छिपा है। इसलिए पहली बात, गुरजिएफ कहता था, जान लेनी जरूरी है। अगर किसी कैदी को मुक्त होना हो तो पहली बात जाननी जरूरी है कि वह कैदी है बाकी नम्बर दो की बातें हैं। **किसी गुलाम को मुक्त होना हो तो उसे पहली बात जाननी जरूरी है कि वह गुलाम है।** यह उसकी चेतना में इतनी गहराई से घुस जानी चाहिए, प्रवेश कर जानी चाहिए कि उसके प्राण पीड़ित हो उठे और मुक्त होने की आकांक्षा से भर जाऐं ।

गलत सवालों के ठीक जवाब नहीं होते

दूसरा प्रश्न, ठीक दूसरा प्रश्न उठ सकता है क्या है मोक्ष ? कथम् बंधा । क्या है बंधन ? कथम् मोक्षा ? क्या है मोक्ष ? बुद्ध के पास जाकर यदि आप पूछते कि क्या है मोक्ष? तो बुद्ध कभी उत्तर नहीं देते थे । अगर आप पूछते क्या है बन्धन ? क्या है मोक्ष ? तो उत्तर मिल सकता था । क्योंकि जिसने अभी ठीक सवाल ही नहीं पूछा उसे ठीक जवाब नहीं दिया जा सकता। **गलत सवालों के ठीक जवाब नहीं होते ।**

और आप क्या पूछते हैं वह आपकी मनोदशा की खबर दते हैं। बन्धन को समझ कर ही मोक्ष को समझा जा सकता है ।

और तब प्रश्न है विद्या क्या ? अविद्या क्या ? बंधन क्या; मोक्ष क्या; विद्या क्या, क्या है ज्ञान ? ठीक होता कि जैसा पहला प्रश्न है बंधन क्या ? मोक्ष क्या ? हमें लगेगा पूछना था अविद्या क्या ? विद्या क्या ?

लेकिन वसा नहीं पूछा है । और यह सांयोगिक नहीं है। पहले पूछना था अज्ञान क्या ? ज्ञान क्या ? वैसे नहीं पूछा है । क्योंकि यहां विद्या से प्रयोजन ही दूसरा है । यहां विद्या से मतलब है बंधन क्या ? मोक्ष क्या ? और जब पूछता है उपनिषद विद्या क्या ? तो उसका मतलब है मुक्त होने का उपाय । विद्या का मतलब ही यह होता है । विद्या का मतलब होता है मुक्त होने का उपाय क्या । विद्या का अर्थ कभी भी यह नहीं होता जैसा हम समझते हैं ।

साधन क्या है ? समझ लिया । समझा कि बंधन क्या ? और समझा कि मोक्ष क्या ? लेकिन साधन क्या । मान लिया कि कारागृह में पड़े हैं । और मान लिया इस कारागृह के बाहर एक मुक्त गगन है । और गगन में उड़ा जा सकता है । और माना कि अंधेरे की दीवालों के पार एक सूर्य भी है । और उस सूर्य के साथ एक हुआ जा सकता है । और माना कि इस देह के पार अमृत का वास है । लेकिन मार्ग क्या ? विधि क्या ? यह भी पता चल जाए कि बंधन क्या है ? और मोक्ष क्या है ? और यह पता न हो कि द्वार कहां, मार्ग कहां, निकलेंगे कैसे ? पहुंचेंगे कैसे ? क्या करें ? तो कुछ भी न हो सकेगा ।

बुद्ध ने चार आर्य सत्य कहें हैं । चार बुनियादी सत्य । और बुद्ध ने कहा है चार को जो जान ले वह सब को जान लेता है । पहला कि आदमी दुख में है । **पहला आर्य सत्य दुख है । दूसरा कि आदमी के दुख में होने के कारण हैं ।** अकारण दुख में नहीं है । क्योंकि अगर अकारण दुख में हो तो छुटकारे का कोई उपाय नहीं होता । और कारण भी हों, आदमी दुख में भी हों, लेकिन अगर कोई मार्ग और विधि न हो तो भी दुख के बाहर नहीं हो सकता । तो बुद्ध ने कहा **पहला सत्य दुख । दूसरा सत्य दुख के कारण । और तीसरा सत्य दुख मुक्ति का उपाय ।** लेकिन दुख भी हो । दुख के कारण भी हों दुख मुक्ति का उपाय भी हो । लेकिन दुख मक्ति से छूटने की संभावना न हो ऐसी कोई अवस्था ही नहीं होती जहां आदमी दुख के बाहर हो पाये तो हम एक दुख से छूटकर दूसरे दुख में पहुंच जाएंगे । **तो बुद्ध ने चौथा आर्य सत्य कहा है दुख मुक्ति की अवस्था है ।** बुद्ध ने कहा कि बस यह चार काफी हैं ।

यहां जब पूछा जा रहा है कि विद्या क्या है ? कैसे मुक्त हो जाऐं ? इसका मार्ग क्या है ? इसकी विधि क्या ? इसका उपाय क्या है ? कहीं ऐसा तो नहीं है

कि बंधन है, करागृह है, दुख है, और आदमी निरुपाय है ? कोई उपाय नहीं । तो फिर संघर्ष व्यर्थ है । फिर क्या हम जहां हैं वहां संतुष्ट हो जाना उचित है । फिर जो है उसी को नियति मान लेना चाहिए । वही भाग्य है । उससे बाहर होने का कोई कारण नहीं है । इसलिए फिर कारागृह को महल मानना ही उचित है । जिसमें रहना ही हो और जिसके बाहर जाना हो ही न सकता हो फिर उसको कारागृह मानकर अकारण दुख पाना व्यर्थ है । ऐसे विचारक हुए हैं जो कहते हैं दुख है लेकिन दुख मुक्ति का कोई उपाय नहीं । दुख ही जीवन का स्वभाव है । इसके पार जाया ही नहीं जा सकता ।

यूनान में एक विचारक हुआ है डायोजिनीस । यूनान के सम्राट ने डायोजिनीस से मुलाकात ली । और डायोजिनीस से पूछा है । कहो मुझसे जीवन का सबसे श्रेष्ठ सत्य क्या है ? सबसे श्रेष्ठ, सबसे महान सत्य क्या है ? डायोजिनीस ने कहा अब उस सर्वश्रेष्ठ, सत्य को जानने का पाने का कोई उपाय नहीं । उसे छोड़ो । नम्बर दो का सत्य पूछो । सम्राट थोड़ा हैरान हुआ । उसने कहा फिर भी नम्बर एक का कहो तो, उसने कहा नहीं उसे जानने का अब कोई उपाय नहीं ।

और अब तो तुम पैदा हो ही गये । **श्रेष्ठतम सत्य यह है पैदा होना ही नहीं । यह पहला सत्य ।** लेकिन अब उसका तो कोई उपाय नहीं । तुम पैदा हो ही गये । निरुपाय है । तो नम्बर दो का सत्य तुमसे कहता हूं । वह यह है पैदा होकर मर जाना ।

'क्यों ?' सम्राट ने पूछा ? डायोजिनीस ने कहा कि **जीवन और दुख एक ही हैं । मिटे बिना बिलकुल मिटे बिना दुख रहेगा ही । होना ही दुख है ।** हैं । मिटे बिना बिलकुल मिटे बिना दुख रहेगा ही । होना ही दुख है । उसके बाहर जाने का उपाय नहीं । स्वभावत. ऐसी अगर स्थिति हो तो सिवाय आत्मघात के कोई साधना नहीं । एसे विचारक हुए हैं जो मानते हैं दुख के बाहर जाने का उपाय ही नहीं । कारागृह से बाहर जाने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि अस्तित्व कारागृह है । इसके बाहर कोई जगह नहीं । इसलिए प्रश्न सार्थक है विद्या क्या ? मार्ग है कोई, उपाय है कोई ? निरुपाय तो नहीं हैं हम । अन्यथा उचित है कि हम स्वप्न ही देखते रहें, सोये रहें, कारागृह को महल समझें । जंजीरों को आभूषण समझें । यही बुद्धिमानी है । बहुत लोग इसी बुद्धिमानी में जीते भी हैं । भुलाये रखते हैं अपने को । ताकि कारागृह का और दुख का पता न चले । क्योंकि बाहर जाने का कोई उपाय तो दिखाई नहीं पड़ता है ।

झुठी तालियाँ–झुठी कुंजियाँ ।

विद्या क्या और अविद्या क्या ? अविद्या का अर्थ यहां अज्ञान नहीं है । अगर विद्या का अर्थ है विधि – उस तक पहुंचने का मार्ग है तो अविद्या का अर्थ क्या होगा ? अविद्या का अर्थ है ऐसी विधि जो विधि मालूम पड़ती है और पहुंचाती नहीं (फाल्स मेथड्स)। निश्चित ही फाल्स मेथड्स भी हैं । मिथ्या विधियां भी हैं । ऐसे दरवाजे भी हैं जो हैं नहीं और दिखाई पड़ते हैं कि दरवाजे हैं । और ऐसी चाबियां भी हैं जो बिलकुल चाबियां मालूम पड़ती हैं लेकिन कोई ताला नहीं है जिनमें वे लगे । वह लगनेवाली चाबियां नहीं । उनसे आदमी जिन्दगी भर खेल सकता है लेकिन कुछ खुलता नहीं ।

'अविद्या मीन्स सूडो मेथड,' **जहां भी खोज होगी वहां झूठी तालियां और कुंजियां भी खोज ली जाती हैं** । क्योंकि वे मुफ्त मिलती हैं । सस्ती मिलती हैं । आसानी से मिल जाती हैं । बाजार में खरीदी जा सकती हैं । **जिसे हम धर्म कहते हैं वह आमतौर से निन्यावे प्रतिशत अविद्या है** । क्योंकि सस्ती खोज, सस्ती चीजें पा लेने की आकांक्षा बाजार में झूठे मार्गों को पैदा करवा देती है । बहुत मार्ग हैं । सबसे अधिक जो भ्रान्त मार्ग हैं, वे विस्मृति के हैं, **किसी भी तरह आदमी अपने को भूल जाए तो कारागृह भी नहीं रह जाता ।**

अगर कारागृह में एक आदमी को शराब पिला दें तो कारागृह बचता है ? नहीं – वह आदमी शराब पी कर कारागृह में नहीं रह जाता, वह आदमी भी नहीं रह जाता । बेहोशी में सब मिट जाता है । और शराब पिया हुआ आदमी कारागृह में सम्राट हो जाता है । और शराब पिया हुआ आदमी कारागृह के भीतर ही सोचता है कि आकाश में उड़ रहा है । अब वह कुछ भी सोच सकता है । क्योंकि शराब के साथ ही स्वप्न की क्षमता मिल जाती है और सत्य का बोध खो जाता है । तो वह भगवान का दर्शन कर सकता है । **जिसे अपना भी दर्शन नहीं हुआ, वह भी भगवान का दर्शन कर लेता है** । जिसे अपना भी पता नहीं वह भी परम का पता लगा लेता है । **तरकीबें हैं धोखा देने की ।**

इस जगत में **अज्ञानियों** से इतना नुकसान नहीं होता । लेकिन उन ज्ञानियों से भारी नुकसान हो जाता है जो आपको झूठी चाबियां पकड़ा देते हैं । उन्हें भी चाबियां पकड़ाने का सुख है । आपको भी बड़ा सुख है । क्योंकि आपको मुफ्त में कुछ मिलता हुआ मालूम पड़ता है जिसके लिए कुछ भी करने की जरूरत नहीं ! और अधिक

लोग बिना कुछ किये पाना चाहते हैं। आदमी का जो बड़े से बड़ा रोग है वह आलस्य है। बड़े से बड़ा रोग प्रमाद है। बिना कुछ किये मिल जाए। बिना चले मंजिल आ जाए। एक भी कदम न उठाना पड़े। मंजिल ही चलती हुई आ जाए। तो इससे शुभ और क्या होगा? तो ऐसे लोगों के पास भीड़ इकट्ठी हो ही जाएगी। वह भीड़ उन्हें भी सुख देती है क्योंकि अहंकार की तृप्ति होती है। तो एक म्युचुअल इक्स-प्लाइटेशन होता है' (Mutual Exploitation) एक पारस्परिक शोषण चलता है। गुरू मिल जाते हैं जिनके पास चाबियां है। शिष्य मिल जाते जो इन चाबियों को खरीदने को तैयार है। और तब एक व्यवसाय चलता है। अविद्या का अर्थ है ऐसी सब विधियां जिनसे द्वार खुलता नहीं लेकिन द्वार के खुले होने का भ्रम पैदा हो जाता है।

स्वप्न जागृत से ज्यादा सत्य

इसलिए जिज्ञासु पूछता है विद्या क्या? अविद्या क्या? जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय यह चार अवस्थाएं क्या हैं? वस्तुतः विद्या और अविद्या का फर्क न समझा जा सकेगा यदि जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, और तुरीय की चार अवस्थाओं को न समझा जा सके। भारत इस पृथ्वी पर पहला खोजी है जिसने मनुष्य की चित्त की चार दशाओं का सर्व प्रथम, मनुष्य के चेतना के इतिहास में उल्लेख किया। पश्चिम का मनसशास्त्र तो अभी तक जागृत के आसपास ही घूमता था। केवल पचास वर्ष पहले तक भी। १९०० तक जागृत के आसपास सारा मनोविज्ञान था। स्वप्न की बात नासमझी थी। स्वप्न की जो बात करे वह पागल था। स्वप्न में क्या रखा है। स्वप्न यानी स्वप्न ही है। उसमें रखा क्या है। लेकिन पिछले पचास वर्षों में जैसे-जैसे मनसविद मनुष्य के मन को समझने में गहरे उतरे, उसके मानसिक रोगों की खोज में गहरे उतरे, वैसे-वैसे उन्हें पता चला कि **जागृत के नीचे एक पर्त है स्वप्न की जो जागृत से ज्यादा महत्वपूर्ण है, कम महत्वपूर्ण नहीं।** तब तक सदा यही ख्याल था कि स्वप्न याने स्वप्न, व्यर्थ की बात है। आदमी की कल्पनाएं हैं। उन पर ध्यान देने की कोई भी जरूरत नहीं। पश्चिम के विचारशील लोग हंसते रहे थे पूर्व पर कि नासमझ स्वप्नों के संबंध में भी बातें करते हैं।

लेकिन 'फ्रायड,' 'जुंग' और 'एडलर' के प्रयासों का परिणाम पचास वर्षों में यह हुआ कि मनोवैज्ञानिक, स्वप्नों के अतिरिक्त और कोई बात ही नहीं करता है। अगर आप मनसविद के पास जाते हैं तो वह पहले आपके स्वप्नों के संबंध में जानना चाहता है। क्योंकि वह कहता है कि आपके जागृत में जो घटित होता है वह बहुत

ऊपरी है। उससे आपके बाबत सचाई का पता .हीं चलता। आपके स्वप्न से ही आपकी सचाई का पता चलता है– स्वप्न से और सचाई का पता चलता है ! क्योंकि स्वप्न में आप धोखा नहीं दे पाते। आदमी धोखे में निष्णात हो गया है। दिन भर आप ब्रह्मचर्य की बातें कर सकते हैं। लेकिन स्वप्न आपको बता देगा कि ब्रह्मचर्य आपका कितना गहरा है। दिन भर आप उपवास रख सकते हैं मजे से लेकिन स्वप्न में पता चल जाएगा कि भोजन करने की वासना कितनी गहरी है। अभी तक आदमी उपाय नहीं कर पाया कि स्वप्न में धोखा दे पाये। तो स्वप्न सचाई प्रकट कर देता है। **स्वप्न में चोर, चोर होता है, साधु, साधु होता है।**

जागरण का भरोसा नहीं है। यहां चोर भी साधु होते हैं और कभी कभी साधु भी चोर मालूम पड़ते हैं।

जागरण का भरोसा नहीं है। जागरण का कोई भरोसा नहीं। क्योंकि आदमी ने जागरण को सब भांति रंग दिया, पोत दिया। तो आप जाग्रत में अपनेको क्या बताते हैं ? उससे ज्यादा झूठी और स्वप्न जैसी बात दूसरी नहीं। और सपने जैसा कोई सच नहीं, क्योंकि अभी तक आपको कोई तरकीब नहीं मिली जिससे आप स्वप्नों में धोखा दे पायें। मिल जाए किसी दिन तो आदमी स्वप्ने भी झूठे देखने लगेगा। अभी तक मिली नहीं आपको किसी दिन तरकीब मिल जाए तो आप स्वप्ने में भी साधु हो सकते हैं। लेकिन अभी तक आप स्वप्नों में प्रवेश नहीं कर पाते। अभी तक स्वप्नों को आप मैनेज (manage) नहीं कर पाते। अभी तक आप उसमें घुस ही नहीं पाये। आप बाहर ही खड़े रह जाते हैं।

इसलिए अगर आपका स्वप्न पकड़ा जा सके तो आपकी गहरी सचाई का पता लगता है। वह दूसरी गहरी पर्त है। आपके ऊपर एक पर्त है वह जागृत है। सुबह से सांझ तक जो हम जागकर दुनिया में करते हैं – भजन करते हैं, पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं। नहीं वह इतनी गहरी बात नहीं है। स्वप्न में क्या करते हैं आप ? वह ज्यादा गहरी बात है। और आपके अंतस् की स्थिति को प्रकट करती है। तो मनस्विद ने भी माना कि **स्वप्न भी एकदम स्वप्न नहीं है। बल्कि जागृत से ज्यादा सच है।**

जागृत-स्वप्न-सुषुप्ति-तुरीय क्या है ?

प्रश्न है, क्या हैं ये चार अवस्थाएं ? क्योंकि इन्हें समझे बिना भीतर प्रवेश असंभव है। लोग कहते हैं आत्मा को जानना है। वे शायद सोचते हैं कि आत्मा

को जान लेना सीधी कोई बात होगी। नहीं पहले जानना पड़ेगा 'जागृत' क्या ? जानना पड़ेगा 'स्वप्न' क्या ? जानना पड़ेगा 'सुषुप्ती' क्या ? जानना पड़ेगा 'तुरीय' क्या ? तब, तब आत्मा में प्रवेश संभव हो सकेगा। **तुरी ही आत्मा है**। यह बड़ी मनोवैज्ञानिक बात है। पश्चिम ने स्वीकार कर लिया कि स्वप्न महत्वपूर्ण है। और फ्रायड जैसे मनस्विद का पूरा जीवन, लोगों के स्वप्न अध्ययन करने में बीता।

लेकिन अभी पश्चिम ने और किसी तर्क को स्वीकार नहीं किया है। अभी पश्चिम ने नहीं पूछा है वॉट इज ड्रीमलेस स्लीप (what is dreamless sleep?) क्योंकि उनका ख्याल है नींद सिर्फ नींद है। जैसे उनका पहले ख्याल था कि स्वप्न सिर्फ स्वप्न है। अभी उनका ख्याल है नींद तो सिर्फ नींद है। एक विश्राम की बात है। आदमी थक गया और सो गया। लेकिन शक पैदा होने शुरू हो गए हैं। १९५० के बाद इन २० वर्षों में शक शुरू हुए हैं। और ख्याल में आना शुरू हुआ है कि नींद भी सिर्फ नींद नहीं है। आज अमरीका में कोई १० बड़ी प्रयोगशालाएं काम कर रही हैं कि यह गहरी नींद क्या है ?

इधर बीस वर्षों में उनको यह बात साफ हो गई कि **जब तक हम आदमी को नींद को नहीं** समझ लेते तब तक आदमी को **समझना मुश्किल है**। क्योंकि एक आदमी साठ साल जीता है तो बीस साल सोता है। यह कोई छोटी मोटी बात नहीं है। बीस साल सोना साठ साल जीने में, एक तिहाई हिस्सा सोना – तो सोने की बहुत गहरी स्थिति होनी चाहिए। इसका उपयोग होगा। जीवन में याद अनिवार्य है। एक आदमी तीन महीने तक बिना भोजन के रह सकता है। लेकिन बिना नींद के नहीं। एक आदमी तीन महीने तक उपवास कर सकता है लेकिन नींद का उपवास नहीं कर सकता।

और भी एक मजेदार बात अभी पश्चिम में उनको ख्याल आनी शुरू हुई कि आदमी बिना स्वप्न के भी पागल हो जाएगा। बिना स्वप्न के भी नहीं रह सकता। अगर आदमी को स्वप्न न देखने दिये जाएं सिर्फ नींद ही लेनी दी जाय। तो वह पागल हो जायेगा।

तब उन्होंने प्रयोग किये क्योंकि अब यंत्र उपलब्ध हैं, जिनसे पता चलाया जा सकता है, भीतर आप कब स्वप्न देख रहे हैं और कब गहरी नींद में हैं – यंत्र बता देते हैं। उनका कांटा जोर से घूमने लगता है जब आपके भीतर स्वप्न चलते हैं। क्योंकि मस्तिष्क काम करता है जब स्वप्न चलते है। आपकी आंख पर भी हाथ रख कर जाना जा सकता है रात में कि आप स्वप्न ले रहे हैं कि नहीं ले रहे हैं। क्योंकि जब

आप स्वप्न ले रहे हैं तब पुतली चलती है। ठीक वैसे ही चलती है जैसे देखने में चलती है। क्योंकि स्वप्न को देखना पड़ता है। और धीरे धीरे अब तो पकड़ में आता जा रहा है कि आंख के चलने की गति से तय हो जाएगा कि आप किस तरह का स्वप्न देख रहे हैं।

जब आप कोई सेक्सुअल ड्रीम (Sexual Dream) देखते हैं काम वासना का तो आपकी आंख की पुतली बहुत जोर से चलती है। तो उसके बाइब्रेशन्स (Vibration) अब ख्याल में आने शुरू हो गये कि वह कितनी तेजी से चलती है। तो बाहर बैठा आदमी भी अब पता लगा सकता है। आप निश्चिन्त न रहें कि आपके स्वप्नों का पता बाहर नहीं चल सकता। आपके कमरे में बैठा आदमी कह सकता है कि यह आदमी भीतर क्या कर रहा है? आज नहीं कल हम तय कर लेंगे कि आंख की गति क्या-क्या होती है? और आपके मस्तिष्क की नसों में बाईब्रेशन्स कब-कब होते हैं। तो पता चल जाएगा कि इस वक्त महात्मा (!) किस तरह का स्वप्न देख रहा है। तो अभी उन्हें पता चला है कि यदि आपको स्वप्न न लेने दिये जाएँ तो आदमी रात में कोई आठ दस स्वप्न देखता है। बीच-बीच में नींद होती है गहरी फिर स्वप्न आ जाते हैं।

तो यंत्र बता देता है आप कब स्वप्न ले रहे हैं। तभी आदमी को उठा दिया जाता है। जैसे स्वप्न लेना शुरू किया उसे जगा देते – स्वप्न टूट जाता उसे फिर सुला देते। जब तक वह स्वप्न नहीं लेता तब तक सोने देते जैसे स्वप्न शुरू किया, उसे फिर जगा देते। तो बड़ी हैरानी हुई कि उसे कितना ही सोने दिया जाए लेकिन स्वप्न नहीं लेने दिया जाए तो १५ दिन के बाद पागलपन शुरू हो जाता है। **स्वप्न भी इतना अनिवार्य है। नहीं तो आदमी पागल हो जाए।** आप सोचते होंगे कि स्वप्न आपको बड़ी तकलीफ दे रहा है। आपके पागलपन का निकास है। अगर स्वप्न रोक दिया जाए आप पागल हो ही जाएंगे। क्योंकि वह जो भीतर रह जाएगा वह दिन में घूमने लगेगा। रात नहीं निकल पाया तो दिन में घूमेगा। अभी तो उचित है कि रात के अंधेरे में स्वप्न में निकल जाता है। अगर दिन में निकला तो फिर अड़चन आयेगी। जो क्रोध आप रात स्वप्न में किसी की हत्या करके निकाल लेते हैं उसे अगर पंद्रह दिन न निकालने दिया जा ए तो हत्या कर गुजरेंगे। वह इतना इकट्ठा हो जायेगा भीतर कि फिर हत्या करनी पड़ेगी। स्वप्न अनिवार्य है। **जब तक जीवन तुरी तक नहीं पहुंच जाता तब तक स्वप्न अनिवार्य है।**

सिर्फ तुरी पर पहुंचे हुए व्यक्ति के लिए न स्वप्न जरूरी रह जाता न निद्रा जरूरी रह जाती है। न जागृति जरूरी रह जाती है। वह तीनों से गुजरता है लेकिन

जरूरी कुछ भी नहीं रह जाता । वह स्वप्न में भी जागा रहता है वह गहरी निद्रा में भी जागा रहता है । वह जाग्रत में भी जागा रहता है । हम जाग्रत में भी स्वप्न देखते रहते हैं । और जाग्रत में भी बीच बीच में झपकियां लेते रहते हैं । क्या हैं ये अवस्थाएं ? इधर २० वर्षों में (पश्चिम को) उनको भी ख्याल में आना शुरू हुआ कि हमें गहरी सुषुप्ति को भी खोजना ही पड़ेगा । काश हम आदमी की नींद ठीक से समझ लें तो आदमी के व्यक्तित्व को और स्वभाव को समझना आसान हो जाएगा ।

नींद के भी गुण हैं, क्वालिटीज (Qualities) हैं और सब आदमी एक सी गहरी नींद में नहीं सोते । लेकिन अभी उन्हें तुरी का कोई ख्याल नहीं । लेकिन जुंग ने कहा है कि हमें पूर्व की सलाह माननी पड़ेगी कि स्वप्न मूल्यवान हैं, पूछने जैसे हैं । नहीं तो, जब पश्चिम में पहली दफा उपनिषदों का अनवाद हुआ तो लोगों ने कहा ये उपनिषद भी क्या हैं ? स्वप्न क्या है ? यह कोई अध्यात्म की बात है पूछना ? पूछो ईश्वर क्या है, मोक्ष क्या है ? समझ में आता है । स्वप्न क्या हैं, यह क्या पूछ रहे हो ! और यह वह हिन्दु पूछ रहे हैं, जो कहते हैं जगत एक स्वप्न है । वह पूछ रहे हैं कि स्वप्न क्या है ? पर गजुंने कहा कि अब हमें स्वीकार कर लेना पड़ा नत मस्तक होकर कि स्वप्न मूल्यवान, हैं, जागरण से भी ज्यादा । लेकिन जुंग मर गया उसके पहले-उसे पता नहीं कि अब उनको स्वीकार करना पड़ रहा है कि सुषुप्ति और भी मूल्यवान है । **जो जितना गहरा है उतना मूल्यवान है ।**

तुरी ही आत्मा है

सुषुप्ति के पीछे भी एक अवस्था है । जो अवस्था नहीं है, जो स्वभाव है । ये तीन अवस्थाएं हैं – जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति । और चौथी अवस्था नहीं है, वह तो हमारा स्वभाव, हमारा होना है । पूछना कि मती है । इसके उत्तर उपनिषद में हम एक एक करके खोजेंगे ।

अन्नमय, प्राण मय, मनो मय, विज्ञान मय, आनन्द मय यह पांच क्या हैं ? क्योंकि हम सुनते हैं कि आत्मा क्या है, खोजें । लेकिन जब तक हम यह न जान लें कि यह शरीर क्या है, तब तक हम आत्मा को न खोज पाएंगे । यह बड़ी वैज्ञानिक खोज है । यह शरीर क्या है ? और शरीर अगर एक ही होता तो आसान था । हमारे भीतर पांच शरीर हैं । उपनिषदों ने हमारे शरीर को पर्तों को पांच हिस्सों में विभाजित किया है ।

ऊपर जो दिखाई पड़ता है वह अन्नमय शरीर है । उसके पीछे छिपा हुआ है

जिसे पश्चिम के वैज्ञानिक अब बायो एनर्जी (Bio – energy) कहते हैं, जीव ऊर्जा। उसे पूर्व ने प्राण कहा है। "शक्ति शरीर' है– ऊर्जा का शरीर है। इस शरीर के ठीक भीतर दूसरी पर्त पर उसके पीछे मनोमय शरीर है। – जिन्होंने मन के भीतर प्रवेश–यात्रा की है वह जानते हैं कि मन भी एक शरीर है। शरीर का कुल मतलब इतना होता है कि उसकी भी एक पर्त से हम घिरे हैं। एम्बोडीड (Embodied) उसकी भी एक पर्त हमें घेरे हुए है।

मन के भी पीछे एक और शरीर है जिसे विज्ञानमय शरीर कहा है। जिसको हम कान्सियसनेस कहते हैं; विज्ञान कहते हैं। वह जो ज्ञान की क्षमता है, भीतर वह भी एक शरीर है।

उसके पीछे और एक शरीर उपनिषद मानते हैं उसे वे आनन्दमय शरीर कहते हैं – 'ब्लिस बाडी'। वह जो हमें जीवन में सुख की झलकें कहीं से मिलती हैं वह हमारे आनन्दमय शरीर की घटनाएं हैं। ये पांच शरीर है।

इन पांच के पीछे हमारी अशरीरी आत्मा है। ये पांच घेरे हैं हमारे कारागृह के। ये पांच – हमारा बंदीगृह है। ये पांच दीवालें हैं। इन पांच दीवालों के बाहर परमात्मा है। और इन पांच दीवालों के भीतर भी परमात्मा है। ये पांच दीवालें गिर जाएं तो ये दोनों परमात्मा एक हो जाएं।

इन पांच दीवालों के भीतर प्रवेश करके भी हमको कभी-कभी बाहर का संस्पर्श हो जाता है। और इन पांच दीवालों के भीतर प्रवेश करके भी कभी-कभी बाहर का परमात्मा हम तक – भीतर अपनी किरण को पहुंचा देता है। पर यह कभी-कभी घटता है। यह घटना कभी-कभी घट जाती है।

कभी किसी के गहरे प्रेम में अचानक इन पांच दीवालों को पार करके किसी के भीतर परमात्मा दिखाई पड़ जाता है। पर यह झलक की बात है। झलक आती है, खो जाती है। इसलिए जब हम किसी के प्रेम में होते हैं, दूसरा व्यक्ति-व्यक्ति नहीं मालूम नहीं पड़ता एकदम परमात्मा मालूम पड़ता है। इसमें कहीं कोई भूलचूक नहीं है। यह एक झलक है। लेकिन यह झलक ही है। इन पांच दीवालों को पार करके घटना घट गई। एक थोड़ी सी सुगन्ध भीतर प्रवेश कर गई। यह रोज-रोज नहीं होगी घटना।

इस लिए प्रेमी पीछे बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं। क्योंकि पीछे मालूम पड़ता है कि बिलकुल साधारण आदमी है। यह तो बिलकुल साधारण स्त्री है।

कहां गई वह झलक ? खो गई—वह एक क्षण की बात थी । वह कभी किसी बहुत संवेदनशील क्षण में वह झलक मिल जाती है ।

कभी-कभी किसी फूल को खिलते देखकर वह झलक मिल जाती है । कभी आकाश में उड़ते हुए किसी बादल को देख कर एक क्षण को आदमी पांचों शरीर के बाहर झांक लेता है । कभी सुबह सूरज उगता है, और उसकी किरण शरीर को ही नहीं छूती, पांचों शरीरों को पार करके भीतर छू जाती है ।

दुनिया में धर्मों की धारणाएं ऐसी ही झलकों में पैदा हुई । कोई कभी स्नान कर रहा है किसी नदी के तट पर, उगा सूरज, कोई ताजा नहाया हुआ खड़ा है और कोई किरण भीतर प्रवेश कर गई सूर्य देवता हो गया । सूर्य परमात्मा हो गया । उसके अनुभव में जरा भी कभी न थी । लेकिन अब कोई आदमी हाथ जोड़ कर खड़ा है क्योंकि सूर्य देवता है । उसे कुछ समझ में नहीं आता । विज्ञान की किताब में पढ़ता कि सिर्फ एक आग का तपता हुआ गोला है, और कुछ भी नहीं । यह समझ में आता है । यह देवता, बिलकुल समझ में नहीं आता ।

तो समाजशास्त्री कहते हैं जो लोग सूरज को देखकर डर गये होंगे, उन्होंने समझ लिया होगा कि सूरज देवता है । ये सब धर्म भय से पैदा हो गए । आग को देखकर कोई डरा होगा, भयभीत हुआ होगा, तो उसको फुसलाने के लिए, आदर देने के लिए कि आग नुकसान न करे, सूरज नुकसान न करे, लोग हाथ जोड़कर, घुटने टेक कर खड़े हो गये । गलत है यह ख्याल । ये पाँच शरीर जाने जाएं तो अंतरयात्रा है ।

संवेदनशील तरंगें

कर्ता क्या ? जीव क्या ? पंच वर्ग क्या ? क्षेत्रज्ञ क्या, साक्षी क्या, कुठस्थ क्या ? अंतर्यामी क्या ? इनके क्या अर्थ हैं । इसी प्रकार जोवात्मा, परमात्मा और माया ये तत्व क्या हैं ? ये प्रश्न उपस्थित किये हैं प्राक्कथन में ! फिर उपनिषद इनके उत्तरों में प्रवेश करेगा । तो हम प्रश्नों को ठीक से समझ लें, प्रश्न करनेवाले मन को समझ लें । प्रश्न की सम्यक् दिशा को समझ लें । उत्तर इतने कठिन नहीं हैं । असली बात प्रश्न है । क्योंकि प्रश्न करनेवाले में ही उत्तर को जन्म लेना होता है । उत्तर कहीं बाहर से नहीं आता । उत्तर कहीं बाहर नहीं है। उत्तर आपके भीतर है ।

अगर ठीक प्रश्न आप पूछ सकते हैं तो आपके भोतर उत्तर जगना शुरू हो जाता है । ठीक प्रश्न का अर्थ है कि आप अपने भीतर उत्तर को चोट देने लगते हैं । गलत

प्रश्न का अर्थ है कि आपके भीतर उससे कोई चोट नहीं पड़ती, उत्तर कभी पैदा नहीं होते। और बाहर से वैसे ही उत्तर दिये जा सकते हैं। लेकिन वे कभी आपके भीतर तक नहीं पहुंचते। एक संयोग चाहिए जब आपके भीतर उत्तर जगे और बाहर से उत्तर दिया जाए तो ही उत्तर आपको मिलता है। नहीं तो नहीं मिलता। जब तक आपके भीतर एक गहरा रिसपान्स(Response)एक प्रतिसंवेदन न हो, बाहर से छेड़े जायें तार और आपके भीतर तक तार न हिल जाएं, आपकी वीणा भीतर न बजने लगे तो बाहर वीणा बजती रहे, कुछ प्रयोजन नहीं।

उपनिषद में हम बाहर उत्तरसे देंगे। लेकिन वह काफी नहीं है। आपको भीतर एक संवेदना पैदा करनी पड़े। तो वह उत्तर आप पर ठीक जगह पड़ने लगेंगे। और ठीक जगह पड़ना ही सब कुछ है। **आपके भीतर संवेदनशील तरंगें हों तो बाहर चे उत्तर भी सहयोगी हो सकते हैं। दोनों के मिलन बिन्दु पर उत्तर उपलब्ध होता है।** और ऐसा तो हो सकता है कि बाहर की जरूरत न पड़े और भीतर उत्तर उपलब्ध हो जाए। ऐसा नहीं हो सकता कि बाहर से उपलब्ध हो जाए और भीतर की जरूरत न पड़े। बाहर गौण है बात। उपयोगी है पर गौण है। आवश्यक है–अनिवार्य नहीं।

तो ऐसा हो सकता है कि बाहर के बिना किसी उत्तर के भी उत्तर मिल जाए। अगर प्रश्न इतना अचूक ही, इतना हृदयपूर्ण हो, इतना गहरा हो, कि सारे प्राण दांव पर लगे हों तो बाहर के बिना उत्तर के भी उत्तर मिल सकता है। लेकिन इससे विपरीत कोई उपाय नहीं।

बाहर बुद्ध भी खडे हों, महावीर भी खड़े हों, कृष्ण भी खड़े हों, और क्राइस्ट भी खड़े हों, और सब चिल्ला-चिल्ला कर उत्तर दें लेकिन भीतर अगर संवेदना जागी न हो, भीतर अगर प्राण प्यासे न हों, भीतर अगर कोई पुकार, न हो, भीतर अगर कोई अभीप्सा न हो, तो कोई उपाय नहीं है। कोई उपाय नहीं है। तब सब उत्तर व्यर्थ चले जाते हैं।

सम्मिलित अवतरण

कल कोई यह न कहे कि संसार में इतना तनाव, इतना उत्पात, इतना संघर्ष व इतना पाप हुआ और भगवान नहीं आया।

इस बार पुनः एक दिव्य चेतना, पृथ्वी पर अवतरित हुई है।

पुनः ईसा, मुहम्मद, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, जीसस और लाओत्से एक साथ एक व्यक्तित्व में समाहित हुए हैं।

इस बार फिर कोई, वही पुरानी गलती न दोहरा दें।
फिर कोई ईसा को फाँसी लगाने की कोशिश न करें,
फिर कोई महावीर के कानों में खीलियाँ ठोकने की हिमाकत न करें,
फिर कोई दयानंद को शीशा पिलाने का उपक्रम न करें,
फिर कोई गांधी को गोली मारने की कूचेष्टा न करें,
फिर कोई मीरा का कठिन इम्तहान न लें,
फिर कोई केंसर जैसी भयानक बीमारी रामकृष्ण को न सताये,
फिर कोई गंगा रामतीर्थ को अपनी गोद में सुलाने की कृपा न करें।

इस व्यक्तित्व को इस महान चेतना को

इस नये अवतरित बुद्ध को अपनी इच्छानुसार लोक कल्याण का पथ प्रशस्त करने दें।

कोई दीवार न बनें।

कोई इरा प्रवाह को न रोकें, बहने दो आत्मा की तरंगों को अपनी मौज में। और देखते रहो तमाशा–दुनिया में क्या होता है ? कैसी नई जागृती आती है।

कैसे एक नया धर्म, मानव धर्म उदित होता है।

कैसे पुराने गले सड़े धर्म पुरानी सड़ीगली बेकार की मान्यताएं जो मनुष्य जाती पर बोझ बन चुकी हैं, अपने आप तिरोहित होती हैं। जैसे सूर्य के उदय होने पर अंधकार जाने कहाँ विलीन हो जाता है। एक नई लहर आएगी और सारे संसार का विषाद, दु ख, संताप वहा ले जायेगी। जो भी जाएगा वह पायेगा।

जो कुछ भी भगवान श्री ने कहा वह सनातन सत्य है और अद्भत है। सारी दुनिया समझदार लोगों की दुनिया, जीवन सत्यों को जानने वालों की दुनिया जानेगी

कि रजनीश क्या है ? सत्य के पथ निर्देशन पर चलने वालों के काफिलें यह सहर्ष स्वीकारेगें कि

कृष्ण का कर्मवाद
बुद्ध का निर्वाण
ईसा का प्रेम
महावीर का त्याग
श्री शंकर का अद्वैतवाद
रामकृष्ण का भोलापन
विवेकानन्द का वेदान्त
रामतीर्थ की मस्ती
दयानन्द का वेद ज्ञान
और अनन्त में एक नयी बात अपनी ही नयी बात लेकर अवतरित हुए हैं,
रजनीश !

और सारी दुनिया को आलोकित करने सत्य का, प्रेम का, प्रकाश का, दीपक लेकर गांव–गांव, गली–गली, घूम रहे हैं ताकि कोई आत्मा जो मुक्ति चाहती है, निर्वाण चाहती है वह लक्ष्य को प्राप्त हो सके, अन्धकार में भटकती न रहे, अन्धकार से प्रकाश की ओर अग्रसर हो सके। और उन सत्यों से परिचित हो सके, जिन्हें वह भुला चूकी है और जिन्हें इसी स्तर के लोग पहले भी कई बार अपनी अपनी भाषा में अपने-अपने देश में कह चुके हैं कई बार वेश बदल-बदल कर दोहरा चुके हैं।

रजनीश का अवतरण सार्थक हो सकेगा अगर आप में से आपके परिवार में से आपके शहर में भी एक व्यक्ति रजनीश को समझने में समर्थ हो सके, और साथ ही यह मेरा सुझाव है कि समझना ही लोककल्याण के लिए हितकर है। रजनीश की आवाज-पृथ्वी के हर कोने में, हर व्यक्ति, हर प्राणी, हर वनस्पति, हर पत्थर यहाँ तक की मृत आत्माओं तक पहुँचनी चाहिए।

अन्यथा कल कोई यह न कहे की इतना तनाव, इतना दुख, इतना पाप, दुनिया में हुआ और भगवान नहीं आया।

डॉ. आर. रामन
२८८, सेक्टर २०–
चंदीगढ़

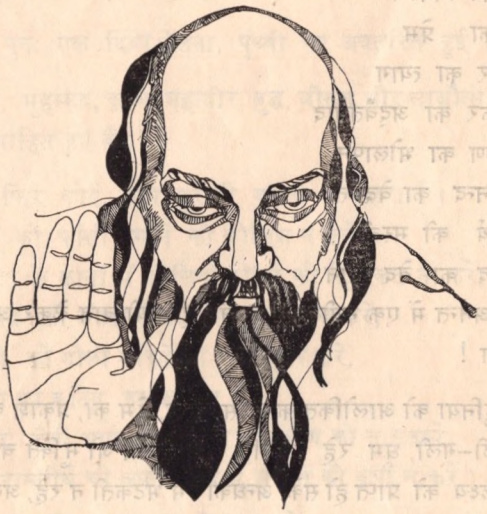

जीवन सृजन के महान संगीत दृष्टा :

भगवान श्री रजनीश :

"मैं उपदेशक नहीं हूं। कोई उपदेश कोई शिक्षा मैं नहीं देना चाहता हूं। अपना कोई बिचार तुम्हारे मन में डालने की मेरी कोई आकांक्षा नहीं है। सब बिचार व्यर्थ हैं और धूलि कणों की भांति बे तुम्हें आच्छादित कर लेते हैं और फिर तुम जो नहीं हो वैसे दिखाई पड़ने लगते हो। और जो तुम नहीं जानते थे वह ज्ञात सा मालूम होने लगता है। यह बहुत आत्मघातक है। मैं कुछ भी देने नहीं आया हूं मैं तो मात्र जगाना ही चाहता हूं तुमने कितनी अंध श्रद्धाओं धारणाओं और कल्पनाओं में अपने को छिपा लिया है। मैं तुम्हारी इस निद्रा को तोड़ना चाहता हूं। स्वप्न नहीं केवल सत्य ही एक मात्र सुरक्षा है। और मैं मात्र इस दिशा में जागने को ही कहता हूं। इससे ज्यादा मेरे मन में कोई ख्याल नहीं है कि तुम और आंख

उठाकर देखो ताकि अतीत की मृत धारणायें टूट सकें। और स्मरण रखें जो व्यक्ति इतनी गहरी अन्तर्दृष्टि को साथ लेकर जी सकता है प्रेम और प्रभु के द्वार उसके लिये खुल जाते हैं।" यह किसे ज्ञात था कि जीवन के इस अन्तर् रहस्यों को अभिव्यक्त करने वाले जीवन क्रान्ति के महाचेता भगवान श्री रजनीश ११ दिसम्बर १९३१ को मध्यप्रदेश के गाडरवारा नामक स्थान में जन्म लेकर मात्र २८ वर्ष की आयु से एक ऐसे आन्दोलन को लेकर खड़े होने वाले हैं जिसमें एक ओर होगा विवेक पूर्ण सिंहनाद और दूसरी ओर मनुष्यता के वे नये सूत्र होंगे जो व्यक्ति को विराटता से जोड़ सकेंगे।

उनके व्यक्तित्व को बाल्यकाल से विद्यार्थी और विद्यार्थी से प्रोफेसर तथा प्रोफेसर से जीवन क्रान्ति के महान संगीत दृष्टा के रूप में एक साथ दर्शाया जाना अत्यन्त दुरुह कार्य है। उनकी विराटता को शब्दों के दायरों में रखना वांछनीय प्रतीत नहीं होता है। फिर भी आज उनकी बृहत्तर चिंतन दृष्टि के आधार पर कुछ विवेचना औचित्य प्रधान प्रतीत होती है, क्योंकि कल भारत को एक बड़े अन्दोलन की शकल मिलेगी जिनको आधारभूत महत्वपूर्ण घोषणायें उन सूत्रों से जुड़ी होंगी जिनका प्रतिपादन भगवान् श्री रजनीश आज शहर से नगरों और नगरों से महानगरों तक बड़ी निर्भीकता कुशलता और तर्कपूर्ण तरीके से कर रहे हैं। वे दूरगामी, वैज्ञानिक एवं मौलिक चिंतनक के रूप में इतिहास के विरले व्यक्तियो को संख्या के अग्रिम क्रम हैं। वर्तमान सदी के मौलिक चिन्तकों में उनका स्थान एक महान मनीषी के रूप में अग्रणी है। हिन्दी के सेनानी डा. सेठ गोविन्ददास ने उनके परिचय में कहा था "मैंने दुनिया के अनेक मुल्क घूमे और साधु सन्त तथा विचारकों के सम्पर्क में, मैं रहा, लेकिन आचार्य रजनीश जैसा तरुण और प्रभावकारी चिंतक मुझे जमीन पर कहीं नहीं मिला। एक ओर जहां सत्य और ध्यान पर प्रकाश डालते हुये अन्तर्जगत के आलोकित करने को कहते हैं, वहां दूसरी ओर बहिर्जगत में स्वस्थ समाज की स्थापना पर अद्वितीय तर्कों और विचारों का प्रतिपादन भी करते हैं।"

भगवान रजनीश जब बोलते हैं तो सारे प्राणों को समेट कर एवं जब मौन में होते हैं तो मानो जैसे सागर का निश्चल जल। ऐसे व्यक्तित्व को शब्दों से बांधना संभावित नहीं है जो अभियंजना से ऊपर एवं प्राणों से गहरा हो। उनका चिंतन जीवन के बृहत्तर पहलुओं को छूते हुये शांति और आनंद में उत्सुक जिज्ञासुओं के मनों में अद्भुत प्यास और घनी पीड़ा का अनुभव कराने में एक शक्ति के समान है।

ईश्वर और सत्य से लेकर जीवन की जुड़ी हुई हर समस्याओं पर वे अपने

मौलिक चिंतन को प्रतिपादित करने वाले अनूठे विचारक हैं। ईश्वर और सत्य के संबंध में उनसे कोई पूछता है तो उनकी आंखों से एक ओज सा दिखाई देता है और बड़ी गम्भीरता से ईश्वर और सत्य के संबंध में प्रचलित भ्रांत धारणाओं को तोड़ते हुये वे कहते हैं "प्रेम ही परमात्मा है। प्रेम के अतिरिक्त परमात्मा कहीं नहीं है। मन्दिर में बैठी हुई मूर्तियां परमात्मा की नहीं हैं वे मनुष्य कृत हैं और मनुष्यकृत मूर्ति मनुष्य की ही हो सकती है परमात्मा की नहीं। शास्त्रों और सम्प्रदायों में जो कुछ है वह ईश्वर या सत्य नहीं है उसे पाने के लिये पूर्ण प्रेम की अनुभूति ही पर्याप्त है। वे कहते हैं 'सत्य शब्दों में नहीं है। सत्य की खोज में स्वयं को बदलना होगा। वह खोज कम और आत्मपरिवर्तन ज्यादा है। जो इस परिवर्तन के लिए पूर्णरूपेण तैयार हो जाता है सत्य उन्हें खोजते हुए आ जाता है।"

यौन आज समाज की बहुत बड़ी समस्या बना है। यौन की गलत शिक्षा ने रुग्णता पैदा कर दी है और देश की शकल कुरूप और कुरूप होती जा रही है। इस दिशा में वे कहते हैं यौन के दमन से यौन का आकर्षण पैदा हुआ है। यौन की अस्वीकृति की वजह से मनुष्य जाति लिखने के पूर्व ही नष्ट हो गई है। हमने कामनी और कंचन से बचने की शिक्षाएं दी हैं। जिसके परिणामस्वरूप मन गहरी कामुकता से भर गया है। यौन की सम्यक शिक्षा दी जानी चाहिए। स्वस्थ मनुष्य के निर्माण के लिये यौन का दमन नहीं यौन का सृजनात्मक तल पर प्रयोग का शिक्षण होना चाहिए।"

आज **राष्ट्रों का भविष्य** अंधकार में है क्योंकि व्यक्ति का भविष्य अंधकार में है। लंदन से आई हुई महिला डा. भारती महेश्वरी से राष्ट्रों के भविष्य के संबंध में उन्होंने कहा है "मैं राष्ट्रों का कोई भविष्य नहीं देखता हूं। राष्ट्र की धारणा ही अब गई गुजरी हो गई है। अब तो वह मृत धारणा है, राष्ट्रो के शवों पर एक विश्व पैदा होगा १०० वर्षों के भीतर ही मनुष्यता राष्ट्रों की मूर्खतापूर्ण सीमा का अतिक्रमण कर जावेगी। पूर्व और पश्चिम का भेद भी मिटेगा। एक मनुष्य जन्म के करीब है। यह मनुष्यता वैज्ञानिक होगी और मनुष्य पर भी विज्ञान का प्रयोग होगा।"

शिक्षा के आमूल परिवर्तन पर बल देते हुये वे शिक्षा को परिभाषित करते हैं एवं कहते हैं "शिक्षा वह है जो सुषुप्ति और अज्ञान को पार करा दे जो शिक्षा दूसरों को कुछ न दे सके वह शिक्षा नहीं है।" आज दुनिया पर विज्ञान और वैज्ञानिक शक्तियां हावी हो गई इसका कारण बताते हुये वे कहते हैं कि "हमारी शिक्षा एकांगी थी पूर्व के मुल्कों ने मात्र आत्मा और शान्ति की शिक्षा दी है। और बाहर के जगत को उपेक्षित किया है और पश्चिम के देश मात्र बाहर के जगत की शिक्षा को दे पायें हैं, उन्होंने

अन्तर्जगत को उपेक्षित किया है । ऐसी एकांगी शिक्षा घातक और खतरनाक है । वे कहते हैं "शिक्षा में आमूल क्रान्ति अपेक्षित है । सबसे बड़ी क्रान्ति तो यह होगी कि शिक्षा जीवन की बहिर्यात्रा में ही समर्थ बनाने के काम को पूरा नहीं मानेगी वह व्यक्ति को अन्तःजीवन में प्रवेश भी सिखाएगी । विज्ञान की शिक्षा के साथ साथ योग भी उसका अनिवार्य अंग होगा । विज्ञान और योग इनके जोड़ से ही हम पूर्ण मनुष्य पैदा कर सकते हैं ।"

विज्ञान और धर्म के संबंध में विषय के विरोध को खंडित करते हुये उन्होंने कहा है "विज्ञान क्या है ? अज्ञात की खोजा और धर्म भी अज्ञात की खोज है। विज्ञान उस जगत की खोज है जो बाहरी है और धर्म उस जगत की जो भीतरी है । वे शत्रु नहीं मित्र हैं । और उनके मिलन में ही मनुष्य का भविष्य उज्ज्वल है । सम्प्रदाय के नाम पर अत्याचार का एक दौर चला है । वे धर्म को संप्रदाय से अलग करते हुये कहते हैं कि "संप्रदाय धर्म नहीं है । धर्म की अभिव्यक्तियां मात्र हैं । जो धर्म को जानना चाहते हैं उन्हें संप्रदायों से ऊपर उठना होगा । संप्रदाय एक बौद्धिक आग्रह मात्र हैं वे धर्म नहीं हैं ।"

भगवान रजनीश की वृहतदृष्टि पर एक साथ प्रकाश डालना अत्यन्त संकोच का कार्य है । वे स्वयं एक दर्शन हैं । उनका व्यक्तित्व ही एक आन्दोलन और चिंतन है । वे जो हैं वही बोलते हैं । इधर हजारों वर्षों से मौलिक चिंतकों का अभाव सा हो गया है । भगवान रजनीश हजारों वर्षों के इतिहास के बाद जिन मौलिक धारणाओं को रख रहे हैं उन सूत्रों और विचारों के झरोंखेसे स्वयं उनका व्यक्तित्व सागर सा विराट होता है । उनके परिचय में मध्यप्रदेश के भूतपूर्व शिक्षा मंत्री श्री परमानंद भाई पटेल ने कहा था "वे स्पष्ट एवं सुलझे हुये विचारों के ऐसे चिन्तक हैं जो कि वर्षों के अन्तर से देश को उपलब्ध होते हैं । मैं उनके वचारों को मालिक एवं नवीन विचार की श्रंखला में ही स्वीकार करता हूं उनसे देश को नई ज्योति मिलेगी ऐसा विश्वास है ।"

भगवान रजनीश का चिंतन देश की सीमाओं से बाहर जाने के निकट है । अफ्रिका, मारीशस, एंटीओक, इन्डोनेशिया, सीरिया, बेल्जियम आदि में वे आमंत्रित किए गए थे । न्यूयार्क उनके विश्व के ध्यान केन्द्र का महानतम केन्द्र बनने जाने की संभावना है । आनेवाले वर्षों में विश्व के अनेकों देश उनके विचारों के प्रति उत्सुक होंगे ऐसी आशा है । जमीन पर दी गई अधूरी शिक्षा के संबंध में वे कहते हैं "धर्म ने जगत को केवल शान्ति और सान्तवना दी है यह कार्य अधूरा था और इसीलिए धर्म

एक जीवन्त सत्य नहीं बन पाया अब धर्म को क्रान्ति भी देनी है। वे कहते हैं "मैं चाहता हूं व्यक्ति को शान्ति मिले और समाज को क्रान्ति, तभी एक मनुष्यता का जन्म हो सकता है। और स्मरण रखें शान्त व्यक्तियों के हाथ में ही क्रान्ति सुरक्षित रह सकती है। मेरा नारा है व्यक्ति को शान्ति समाज को क्रान्ति।"

मैं भगवान रजनीश के जबलपुर निवास के दिनों में एकदम निकट था। सन् १९६० से उन्हें सुना १९६४ से उनका और मेरा साथ बहुत निकट रहा आया। उनके अनेक कार्यक्रमों में देश के अनेक नगरों में उनके साथ मैंने भ्रमण किया है। उनके व्यवहारिक जीवन से लेकर उनकी वैचारिक महानता को बिलकुल समीप से देखा है, अनुभव किया है। उनके जन्म दिवस पर इतना ही लिख सकना संभावित हो सक रहा है कि वे उस दीर्घायु को प्राप्त हों जिसका अन्त न होता हो।

(भगवान श्री के जन्मदिवस के अवसर पर एडवोकेट श्री अजितकुमार जैन, जबलपुर का पत्र)

पत्र–प्रेरणा

संकलन : स्वामी योग चिन्मय

अविचलता से स्वयं का अनुसरण करो

प्रिय योग चिन्मय,

प्रेम । व्यक्ति स्वयं के विचारो की अवज्ञा कर देता है, क्योंकि ये विचार उसके ही होते हैं ।

और यही अवज्ञा अंततः आत्मघात सिद्ध होती है ।

तुम्हारे लिए तुम्हीं सर्व प्रथम हो ।

इसे क्षणभर को भी भूलना खतरनाक है ।

यह अहंकार नहीं, सत्य की विनम्र स्वीकृति मात्र है ।

आत्यंतिक अविचलता से स्वयं का अनुसरण करो ।

अन्यथा बाद में पछतावे के आंसुओं के अतिरिक्त आत्मा के पास कुछ भी नहीं होता है ।

और जबकि भीड़ की आवाजों की चीख तुम्हारे प्रतिपक्ष में हो उस क्षण तो अत्यंत सावधानी से स्वयं में थिर रहना क्योंकि चुनौतियों के ऐसे विरल क्षणों में ही निजता का जन्म होता है ।

रजनीश के प्रणाम

(प्रतिः स्वामी योग चिन्मय, बम्बई,) २५–५–१९७१

अन्तर्ज्योति

प्रिय योग चिन्मय,

प्रेम । पुस्तकों और परंपराओं को व्यर्थ बना दो और वही करो जो कि तुम सोचते हो कि करने योग्य है, वह नहीं जो कि लोग कहते हैं कि करो ।

प्रकाश की उस किरण को खोजो जो कि प्रभु ने प्रत्येक में छुपाई है ।

ऋषियों के ज्योतिर्मय से ज्योतिर्मय वचन भी स्वयं की उस अन्तर्ज्योति के समक्ष फीके हैं ।

क्योंकि सत्य का कोई हस्तांतरण संभव नही है ।

उसकी अनुभूति तो है, अभिव्यक्ति नहीं ।

निज में, निजता में ही पाये बिना उसे पाने की कोई और विधि नहीं है ।

रजनीश के प्रणाम

(प्रति: स्वामी योग चिन्मय, बम्बई) २१-५-१९७१

शास्त्रों से मन पसंद अर्थ निकालने की कुशलता

प्रिय कृष्ण सरस्वती,

प्रेम । शास्त्र दया योग्य हैं।

क्योंकि, आदमी उनमें से वही निकाल लेता है, जो कि निकालना चाहता है ।

शास्त्र आदमी के समक्ष बहुत असमर्थ हैं।

प्रसिद्ध आंग्ल- अभिनेता चार्ल्स बेनिस्टर (Charles Bannister) को किसी भोज में शराब पीते देखकर उसके निजी चिकित्सक ने रोका और कहा: "अब उस गंदी चीज को और न पियो--और मैं कितनी बार तुमसे नहीं कह चुका हूं कि पृथ्वी पर शराब से बड़ा शत्रु तुम्हारा और कोई भी नहीं है ?"

बेनिस्टर ने शराब पीते-पीते कहा : "ज्ञात है मुझे लेकिन क्या धर्मशास्त्र में यह आदेश नहीं दिया गया है कि शत्रुओं को प्रेम करो ?"

रजनीश के प्रणाम

१-४-१९७१

(प्रति: स्वामी कृष्ण सरस्वती, आनंद-नीड़ आश्रम, नैरोबी, केन्या, आफ्रिका)

आदमी की गहन मूर्छा

प्रिय कृष्ण सरस्वती,

प्रेम । सोया हुआ होना साधारणतः लोगों का जीने का ढंग है ।

और आदत इतनी गहरी है कि स्मरण भी नहीं आता है ।

और फिर निरंतर अभ्यास से कुशलता भी उपलब्ध हो जाती है । .

एक धर्मगुरू ने एक दिन किसी चर्च में बोलना शुरू किया तो कहा : "मैं आपके नगर जोहन्सटाउन में आकर अत्यंत आनंदित हूं ।"

और फिर क्षण भर को रुका ।

तभी एक व्यक्ति ने चौंककर कहा : "जोहन्सटाउन ? नहीं, महोदय ग्रीनवर्ग !"

"धर्मगुरू ने कहा : 'मुझे ज्ञात है, लेकिन मैं जानना चाहता था कि यहां कोई जागा हुआ भी है या नहीं ?"

रजनीश के प्रणाम

२–४–१९७१

(प्रतिः स्वामी कृष्ण सरस्वती, आनंद-नीड़ आश्रम, नैरोबी, केन्या, आफ्रिका)

भीतर डूबो और भीड़ को स्वयं से बाहर करो

प्रिय कृष्ण कबीर,

प्रेम । चेतना की सूक्ष्म वाणी प्रत्येक के पास है ।

लेकिन, हम उसके प्रति व्यवस्थित रूप से बहरे बन गये है ।

दूसरों के अनुगमन से प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को इतना दीन बना देता है कि वह स्वयं को ही सुनने जानने और मानने में असमर्थ हो जाता है ।

और फिर स्वभावतः एक ऐसे नकली और थोथे जीवन का जन्म होता है जो कि मृत्यु से भी ज्यादा मृत होता है ।

कंठ हमारा, और वाणी दूसरो की ।

बुद्धि हमारी और विचार दूसरों के ।

समाज व्यक्ति को सब भांति नष्ट करता है ।

और भीड़ प्रत्येक की आत्मा पर कब्जा करना चाहती है ।

इसलिए क्रमशः भीतर डूबो और भीड़ को स्वयं से बाहर करो ।

शांति के क्षणों में स्वयं को सुनने का प्रयास करो।

समाज के कारागृहों के अतिक्रमण (Transcendance) से ही तुम्हारे कान तुम्हें वापिस मिलेंगे।

और तुम्हारी आंखें भी।

और तुम भी

और स्वयं को पा लेना प्रभु के मंदिर को पा लेना है।

रजनीश के प्रणाम

१८-५-१९७१

(प्रतिः स्वामी कृष्ण कबीर, बम्बई, भारत)

दुखवा मैं कासे कहों?

मेरे प्रभो !
लगता है कई युग बीत गये
जब तुम्हारी मन मोहिनी छवि के दर्शन
इन पापिनी आंखों को हुए थे
और अनन्त काल से भयंकर ज्वाला में जलती हुई यह आत्मा
एक शीतल आनन्द–बोध से नाच उठी थी।
मेरे मीत !
नहीं जानता, तुम जैसे निठुर से
क्यों मैं प्रेम करता हूं ? और
मेरा हृदय क्यों बरबस तुम्हारी ही ओर खिंचा जाता है ??
कभी – कभी लगता है, तुम्हें एकदम भूल जाऊं–
जैसे कि कभी तुम्हें देखा ही नहीं,
पर, दूसरे ही क्षण बावरों–सा अपने पर ही
हंस पड़ता हूं––
क्या भूल पाना अपने वश में है ?
हां, मेरे प्रिय !
कैसे भूला जाय ?
जबकि तुम लगातार पीछा करते हो – जहां जाता हूं
यहां तक कि 'रात'
'सोने' के लिए बिस्तर लगाता हूं,
और तुम जाने कब जागरण बनकर
भीतर आ जाते हो और
मेरी 'नींद' से अठखेलियां करने लगते हो।
और मैं चौंक – चौंक जाता हूं, कि
तुम कहां हो ?
तुम कहां हो ??

–स्वामी अगेह भारती,
जबलपुर (म. प्र.)

"पाठको से सूचना"

'ज्योति शिखा' का यह अंक अंतिम प्रकाशन है। ग्राहकों से अनुरोध है कि वे आगामी अंकों का चन्दा जीवन जागृति केन्द्र, बम्बई को भेजने का कष्ट न करें।

वैराग्य अमृत कीर्त्तन मंडली ने अपना उड़ीसा का कार्यक्रम पूरा करने के बाद महाराष्ट्र भ्रमण करके पंजाब जाने की योजना बनायी है।

स्वा. महेश योगी एवं स्वा. आनन्द समीर जी ने कलकत्ता के भगवान श्री के प्रेमी श्री हीराचन्द्र मेहता और नालंदा साहित्य सदन के सहयोग से कलकत्ता में बहुत सुन्दर कार्यक्रम का आयोजन किया था। लुधियाना से 'जीवन जागृति केन्द्र' के उत्साही कार्य कर्त्ता श्री गुप्ता जी आनन्द मासिक के लिए अथक परिश्रम कर रहे हैं। पाठकों से निवेदन है कि वे चन्दा भेजकर उनका उत्साह वर्धन करें।

मुद्रक प्रकाशक : ईश्वरलाल एन. शाह, जीवन जागृति केन्द्र, ३१ इजराइल मोहल्ला, भगवान भुवन, मस्जिद बंदर रोड, बम्बई-९ मुद्रणस्थान : स्टेट्स पीपल प्रेस, बम्बई १